अछूत-समस्या

सपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का १२९वाँ पुष्प

अछूत-समस्या

लेखक
महात्मा गांधी

अनुवादक
श्रीपरिपूर्णानंद वर्मा
['निठल्लू की राम-कहानी' के लेखक]

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १।)] सं० १९९१ वि० [सादी ।॥)

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

प्रेमोपहार

संपादक का वक्तव्य

हमारी सम्मति में यह पुस्तक एक अत्यंत सामयिक आवश्यकता की पूर्ति है। इसे प्रकाशित कर इस कार्यालय ने अपने को पवित्र कर लिया है।

लेखों का अनुवाद कैसा हुआ है, इसकी परीक्षा पाठक स्वयं कर लें। लेखों के ऊपर हमने जो संपादकीय नोट दिए हैं, वे केवल लेखों की व्याख्या के लिये, उनके विषयों को स्पष्ट कर देने के लिये तथा उनका संबंध बतला देने के लिये। लेखों का क्रम भी उनकी उपादेयता तथा व्याख्या और आवश्यकता के अनुसार रक्खा गया है, न कि उनके लिखे जाने के समय के अनुसार।

आशा है, पुस्तक से पाठकों को लाभ होगा।

कवि-कुटीर
१।२।२४

दुलारेलाल भार्गव

अनुवादक के दो शब्द

गांधीजी भारत का दौरा कर रहे हैं। अछूतोद्धार के लिये उन्होंने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी है। अगली अगस्त तक वह केवल हरिजन-सेवा-कार्य करेंगे। केवल हरिजन-सेवा उचित है अथवा नहीं, राजनीतिक कार्य अधिक महत्व-पूर्ण है अथवा यह कार्य, तथा गांधीजी का इस कार्य के लिये ही अपने प्राणों की बाज़ी लगा देना उचित है या नहीं, इस विषय में लोगों का भिन्न मत है। मेरा भी अपना मत है। पर यह समस्या इतनी गंभीर है कि इस पर हर पहलू से विचार करना ही होगा। गांधीजी इस समय से नहीं, आज २० वर्ष से हरिजनों के सबसे सच्चे, श्रेष्ठ तथा महान् सेवक हैं। इस महान् कार्य के विरोधियों के लिये गांधीजी से बढ़ा कोई शत्रु नहीं। अतएव अछूत-समस्या पर गांधीजी का मतव्य ज्ञात होना आवश्यक है। जिन्हें उनका व्याख्यान सुनने का अवसर न मिला हो, जो उनके विरोधियों के तर्कों से निराश हो गए हों, उनके लिये यह आवश्यक है कि एक ही स्थान पर एकत्रित गांधीजी के विचारों को पढ़कर इस समस्या को अच्छी तरह हृदयंगम कर लें।

आज से एक वर्ष पूर्व अपनी 'हिंदू-हित की हत्या'-पुस्तक लिखने के बाद तथा दीवान गोकुलचंद्र कपूर-लिखित 'दलितों की समस्या'-पुस्तक को पढ़कर मैंने यह निश्चय किया था कि हरिजन-समस्या पर गांधीजी के लेखों को एक स्थान पर एकत्रित करूँगा। और, अँगरेज़ी में मैंने २४-२५ लेख इकट्ठे भी किए, पर उनका अनुवाद करने का समय न मिला। इसी बीच भाई रामनाथलाल सुमन की The Bleeding Wound-नामक सुंदर पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें गांधीजी के लेखों का बड़ा सुंदर संग्रह है।

इस पुस्तक मे प्रायः वे सभी लेख आ गए थे, जिनको मैंने इकट्ठा किया था। इससे मुझे अपने लेखों की कटिंग मिलाने, काट-छाँट करने तथा अपना अनुवाद सही करने में बड़ी सुविधा मिली। मैं सुसनजी का कृतज्ञ हूँ।

अपने अनुवाद के विषय मे मुझे दो बातें कहनी हैं—पहले तो मैं कई बातों मे गांधीजी से पूर्णतः सहमत नही हूँ। दूसरे, 'हरिजन' तथा 'अछूत'-शब्दों के प्रयोग के विषय मे मैंने केवल धार्मिक भाव का ध्यान न कर आवश्यकता तथा औचित्य का ही विचार रक्खा है। जान-बूझकर हर स्थान पर अछूत के लिये हरिजन नहीं लिखा है। साथ ही जहाँ पर आवश्यकता हुई, मूल के साथ एक वाक्य जोड़कर संबंध स्पष्ट कर दिया गया या अनावश्यकता होने पर निकाल दिया गया है।

यह मेरी पहली अनूदित पुस्तक है। स्वच्छंद लिखनेवाले को अनुवाद में वैसी ही पराधीनता मालूम होती है, जैसे पक्षी को पींजड़े में। अतएव अनुवाद में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक है। आशा है, हमारे पाठक इसके लिये क्षमा करेंगे। अनुवाद को ठीक करने के लिये, संशोधन के कष्टों के लिये, मैं सपादकजी का कृतज्ञ हूँ, और उन्हें सावधानी से संपादन करने तथा लेखों के ऊपर अपने नोट देकर उन्हें अधिक स्पष्ट बनाने के लिये धन्यवाद देता हूँ।

ईश्वर करे, यह पुस्तक उन मूढ विचारकों के मन में कुछ प्रकाश उत्पन्न करे, जो अब भी 'अस्पृश्य' कहलानेवालों को छूना पाप समझते हैं।

जालिपादेवी, काशी
१९—२—३४

परिपूर्णानंद वर्मा

विषय-सूची

हरिजन

हरिजन तें चाहो भजन, तौ हरि-भजन फिजूल,
जन द्वारा ही करत हैं राजन मिलन कबूल।

*　　　*　　　*

कलिजुग ही मैं मो मिली अति अचरजमय बात—
होत पतितपावन पतित छुवत पतित जब गात।

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अछूत-समस्या —

लेखक

अछूत-समस्या

अछूत-प्रथा और उसकी विषमताएँ

[१९२४ मे, बेलगाँव मे, कांग्रेस-सप्ताह के अवसर पर, अछूत-सम्मेलन मे महात्मा गांधी ने एक बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया था। नीचे उसका अंशानुवाद दिया जा रहा है। इसको पढ़कर पाठकों को यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि गांधीजी के हरिजन-संबंधी विचारों को किसी प्रकार भी जड़ कहना कितना अनुचित है। उनके विचार कितने प्रगत है।--संपादक]

मित्रो, अछूतोद्धार के विषय में अपनी सम्मति प्रकट करने के लिये मुझसे कहना एक प्रकार से अनावश्यक ही है। मैंने अगणित बार सार्वजनिक व्याख्यानो में कहा है कि यह मेरे हृदय की प्रार्थना है कि यदि मैं इस जन्म में मोक्ष न प्राप्त कर सकूँ, तो अपने अगले जन्म मे भंगी के घर पैदा होऊँ। मै 'जन्मना' तथा 'कर्मणा' दोनो रूप से 'वर्णाश्रम' में विश्वास रखता हूं, किंतु भंगी को किसी भी रूप में हीन 'आश्रम' का नहीं समझता। मैं ऐसे बहुत-से भंगियो को जानता हूं, जो आदर तथा श्रद्धा के पात्र हैं। और, ऐसे बहुत-से ब्राह्मणो को भी जानता हूँ, जिनके प्रति ज़रा भी श्रद्धा तथा आदर का भाव

होना कठिन ही है। मेरे उपर्युक्त विचार होने के कारण मेरी धारणा है कि अछूतों के बीच में ही जन्म लेने से मैं उनकी अधिक लाभदायक सेवा कर सकूँगा, तथा दूसरे समुदायों से उनकी ओर से बोल सकूँगा।

किंतु जिस प्रकार मैं यह नहीं चाहता कि छूत कहलानेवाले अछूतों से घृणा करें, उसी प्रकार मैं यह भी नहीं चाहता कि अछूत के हृदय में छूत के प्रति कोई दुर्भाव हो। मैं नहीं चाहता कि पश्चिम के समान वे हिंसा द्वारा अपना अधिकार प्राप्त कर लें। मै स्पष्ट रूप से अपने सामने ऐसा समय देख सकता हूँ, जब संसार में शक्ति के फैसले से ही अपना अधिकार प्राप्त करना संभव न होगा। इसीलिये जिस प्रकार मै ब्रिटिश सरकार के विषय में कहता हूँ, उसी प्रकार अपने अछूत भाइयों से आज कहता हूँ कि यदि वे अपनी कार्य-सिद्धि के लिये शक्ति की शरण लेंगे, तो अवश्य ही असफल होंगे।

मैं हिंदू-धर्म का उद्धार करना चाहता हूँ। मै अछूतो को हिंदू-समाज का अंतर्भाग समझता हूँ। जब मैं एक भी भंगी को हिंदू-धर्म के दायरे के बाहर जाते देखता हूँ, तो मुझे बड़ा क्लेश होता है, किंतु मेरा यह विश्वास है कि समुदाय के सभी भेद मिटाए नहीं जा सकते। मैं गीता में भगवान् कृष्ण द्वारा सिखलाए गए समानता के सिद्धांत में विश्वास करता हूँ। हमें गीता की सीख है कि चारो जातियों—वर्णों के लोगों को समान भाव

से देखना चाहिए। पर उसने ब्राह्मण तथा भंगी के लिये एक ही 'धर्म' नहीं बतलाया है। उसका तो कहना है कि जिस प्रकार ब्राह्मण की पाडित्य के लिये प्रतिष्ठा होती है, उसी प्रकार भंगी की भी होना चाहिए। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि इस बात का ध्यान रक्खें कि अछूतों को यह महसूस न होने पावे कि उनसे हिकारत की जाती है। चाहे ब्राह्मण हो या भंगी, यदि वह एक ही ईश्वर की पूजा करता है, तथा अपने शरीर और मन को स्वच्छ रखता है, तो मैं उसे किस प्रकार दो निगाहो से देख सकता हूँ। कम-से-कम मै तो यह पाप समझता हूँ कि भंगी को रसोई का बचा-खुचा जूठा भोजन दिया जाय, या आवश्यकता पडने पर उसकी सहायता न की जाय।

मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर दूँ। यद्यपि मै यह मानता हूँ कि हिंदू-धर्म में अछूत-प्रथा के वर्तमान रूप का कोई शास्त्रीय आज्ञा नहीं है, पर किन्हीं दशाओ मे, एक सीमित रूप में, अछूत-प्रथा को स्वीकार किया गया है। उदाहरण के लिये जब कभी मेरी माता कोई गंदी चीज छूती थीं, तो अछूता हो जाती थीं, और स्नान द्वारा उन्हें शुद्ध हाना पड़ता था। कोई अपने जन्म से अछूत हो सकता है, यह मानना मैं एक वैष्णव होने के नाते अस्वीकार करता हूं। धर्म मे जिस प्रकार के अछूत-पन की आज्ञा है, वह प्रकृततः अस्थायी है—कर्म तथा क्रिया द्वारा शुद्धि-अशुद्धि होती है, न कि कर्ता द्वारा। इतना ही नहीं, ठीक जिस प्रकार बचपन में अपनी माताओ की सेवाओं,

हमारे मैले-कुचैलेपन को दूर करने की शुश्रूषाओ के लिये हम लोग उनकी प्रतिष्ठा करते हैं, ठीक उसी प्रकार समाज की सेवा करने के कारण भंगी के सबसे अधिक आदर होना चाहिए।

इसके साथ एक दूसरी बात भी है। मै सहभोज तथा अंतर्जातीय ब्याह को अछूत-प्रथा दूर करने के लिये अनिवार्य नहीं मानता। मैं वर्णाश्रम-धर्म मे विश्वास करता हूँ, पर भगियो के साथ खाना भी खाता हूँ। मै नहीं कह सकता कि मै संन्यासी हूँ, क्योकि इस कलियुग मे कोई संन्यासी के लिये निर्धारित नियमो का पालन कर सकता है, इसमें मुझे घोर संदेह है। पर मै जान-बूझकर संन्यास की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। इसलिये मेरे लिये किसी बंधन का पालन करना अनावश्यक ही नहीं, प्रत्युत हानिकर भी है। अतर्जातीय ब्याह का प्रश्न मेरी ऐसी दशावाले के लिये उठता ही नहीं। मेरे लिये यही कहना पर्याप्त है कि मेरी योजना मे अंतर्जातीय ब्याह नहीं है। मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि मेरे समाज में सब लोग एक साथ (एक दूसरे के यहाँ) भोजन नहीं करते। हमारे कतिपय वैष्णव-परिवारों में दूसरे का बर्तन या दूसरे की अँगीठी की आग भी काम मे नहीं लाते। आप इस प्रथा को अंध-विश्वास कह सकते है, पर मै इसे ऐसा नहीं समझता। यह तो निश्चित है कि इससे हिंदू-धर्म की कोई हानि नहीं हो रही है। मेरे आश्रम में एक 'अछूत' साथी अन्य आश्रमवासियों

के साथ बिना किसी भेद-भाव के भोजन करता है, पर मैं आश्रम के बाहर किसी व्यक्ति को ऐसा करने की सलाह नहीं देता। साथ ही आप यह भी जानते हैं कि मैं मालवीयजी की कितनी इज्जत करता हूँ। मैं उनके पैर धो सकता हूँ। पर वह मेरा छुआ खाना नहीं खा सकते। क्या मैं इसे अपने प्रति उनकी उपेक्षा समझकर इससे बुरा मानूँ? हर्गिज नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह उपेक्षा के कारण ऐसा नहीं करते।

मेरा धर्म मुझे 'मर्यादा-धर्म' का पालन करना सिखलाता है। प्राचीन युग के ऋषियों ने इस विषय में खूब छान-बीन तथा गवेषणा द्वारा कुछ महान् सत्यों का अनुसंधान किया था। इन सत्यों की समानता किसी भी धर्म में नहीं वर्तमान है। उनमें से एक यह भी है कि उन्होंने मनुष्य के आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिये हानिकर कतिपय खाद्य पदार्थों का पता लगाया था। अतः उन्होंने उनके सेवन का निषेध किया है। मान लो, किसी को खूब यात्रा करनी है, और उसे भिन्न रीति-रिवाज तथा भोजन करनेवाले व्यक्तियों के बीच में रहना है—यह जानकर कि जिस समुदाय के बीच में रहना होता है, उसके व्यक्तियों की समाज-प्रथा नए व्यक्ति पर कितना दबाव डाल सकती है, ऐसी विषम समस्याओं का सामना करने के लिये उन्होंने 'मर्यादा-धर्म' की रचना की। मैं उसे हिंदू-धर्म का अनिवार्य अंग नहीं मानता। मैं एक ऐसे समय की भी कल्पना कर सकता हूँ, जब ये बाधाएँ बिल्कुल ही उठा दी जायँगी। पर अछूतोद्धार-

आंदोलन में जिस प्रकार का सुधार कराने की सलाह दी जा रही है, उसमें सहभोज तथा अंतर्जातीय विवाह की बाधा भी उठा देने की बात नहीं कही जा रही है। अपने ऊपर पाखंड तथा अव्यवस्थित चित्तवाला होने का दोष लगने का भय होने पर भी मैं जनता से इनको एकदम दूर कर देने की सलाह न दूँगा। उदाहरणार्थ मैंने अपने लड़के को मुसलमान-घरों में स्वेच्छा-पूर्वक भोजन करने दिया, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह इस बात की पूरी तरह से फ़िक्र रख सकता है कि क्या खाद्य है तथा क्या अखाद्य। मुसलिम घर में भोजन करने में मुझे स्वयं कोई एतराज़ नहीं है, क्योंकि भोजन के विषय मे अपने लिये मैंने बड़े कठोर नियम बना रक्खे है। मैं आपको अलीगढ की एक घटना बतलाता हूँ—मैं और स्वामी सत्यदेव ख़्वाजा साहब के मेहमान थे। स्वामी सत्यदेव मेरे विचारों से सहमत नहीं थे। मैंने आपस में बहुत कुछ तर्क-वितर्क किया, और स्वामी सत्यदेव से समझा दिया कि मेरे जिस प्रकार के विचार हैं, उनको रखते हुए एक मुसलमान के हाथ का भोजन अस्वीकार करना उतना ही अनुचित है, जितना भोजन कर लेना स्वामी के लिये 'मर्यादा का उल्लंघन' करना होगा। अतएव स्वामी के लिये भोजन बनवाने का अलग से प्रबंध करना पड़ा। इसी प्रकार जब मै बारी साहब का मिहमान हुआ, तो उन्होने एक ब्राह्मण-रसोइयाँ तैनात किया, और उसे सख़्त हिदायतें दीं कि रसोई का सब सामान

बाजार से लाकर रसोई बनाया करे। इसका कारण उन्होंने यह बतलाया कि वह नहीं चाहते कि जनता के मन में इस प्रकार का कुछ भी संदेह हो कि वह मुझे तथा मेरे साथियो को मर्यादा-भ्रष्ट करना चाहते हैं। इस एक घटना ने मेरी नजरों में बारी साहब को बहुत ऊँचा उठा दिया।

मैं इस एक खान-पान की बात पर इतने विस्तार के साथ इसीवास्ते बोल गया कि मैं आपके सामने यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि आपके (अछूतों के) साथ या इस विषय में किसी दूसरे के साथ व्यवहार में कोई पाखंड हर्गिज नहीं बर्तना चाहता। मैं आपको अंधकार में रखना या झूठा लालच दिलाकर अपना समर्थन प्राप्त करना नहीं चाहता। मैं अछूत-प्रथा को इसलिये उड़ा देना चाहता हूँ कि उसका मूलोच्छेदन स्वराज्य-प्राप्ति के लिये अनिवार्य है, और मैं स्वराज्य चाहता हूँ। पर अपने किसी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये मैं आपको नहीं मिलाना चाहता। मेरे सामने जो प्रश्न है, वह स्वास्थ्य से भी अधिक बड़ा है। मैं अछूत-प्रथा का इसलिये अंत करना चाहता हूँ कि यह आत्मशुद्धि के लिये आवश्यक है। अछूतो की शुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है, यह निरर्थक बात है, किंतु स्वयं मेरी तथा हिंदू-धर्म की शुद्धि अभीष्ट है। हिंदू-धर्म ने इस दूषण की धार्मिक आज्ञा देकर एक बड़ा भारी पाप किया है, और मैं अपने शरीर पर ही ओढ़कर इस पाप का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।

ऐसी दशा में, मेरे कार्य के लिये, मेरे सामने दो ही मार्ग खुले हुए हैं—अहिंसा और सत्य। मैंने एक अछूत-बच्चे को अपना बच्चा बना लिया है। मै यह स्वीकार करता हूँ कि मैं अपनी स्त्री को अपने विचार से पूरी तरह सहमत नहीं कर सका हूँ। वह उसे उतना प्यार नहीं करती, जितना मै। पर मै उसका मत-परिवर्तन क्रोध द्वारा नहीं, प्रेम द्वारा ही कर सकता हूँ। यदि हमारे किसी आदमी ने आपका बुरा किया हो, तो मै आपसे उसके लिये क्षमा माँगता हूँ। जब मै पूना में था, अछूत-समुदाय के किसी व्यक्ति ने कहा था कि यदि हिंदू उनकी ओर से अपना व्यवहार नहीं बदलेंगे, तो वे ज़बर्दस्ती अपना अधिकार प्राप्त कर लेंगे। क्या इस प्रकार अछूतों की दशा सुधर सकती है? घोर सनातनी हिंदुओ का मत-परिवर्तन केवल धैर्य-पूर्ण तर्क तथा उचित व्यवहार से ही हो सकता है। जब तक उनका मत-परिवर्तन नहीं होता, मै आपसे अनुरोध करूँगा कि धैर्य-पूर्वक अपनी वर्तमान दशा को सहन कीजिए। मै आपके साथ खड़ा रहने, कंधा मिलाकर आपकी पीडाओ में हाथ बँटाने के लिये तैयार हूँ। जिस मंदिर मे ऊँची जाति के लोग उपासना करते है, उसमें आपको भी उपासना का अधिकार मिलना ही चाहिए। स्कूलो में भी अन्य जाति के बच्चों के साथ आपके बच्चो को भी पढ़ने का अधिकार मिलना चाहिए। इस भूमि का सबसे बड़ा सरकारी ओहदा—वाइस-राय तक का पद—भी आपको मिलने का अधिकार होन

चाहिए। अछूत-प्रथा को मिटा देने की मेरी यही व्याख्या है।

पर इस कार्य में मै आप की सहायता अपने धर्म द्वारा प्रदर्शित उपाय से ही कर सकता हूँ, न कि पश्चिमीय उपाय से। इस उपाय से मैं हिंदू-धर्म की रक्षा नहीं कर सकता। आपका उद्देश्य पवित्र है। किसी पवित्र कार्य की सिद्धि क्या शैतानी उपायो से हो सकती है? मै इसीलिये आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अपनी दशा सुधारने के लिये पशु-बल के उपयोग का ध्यान छोड दीजिए। गीता का कथन है कि हृदय से ईश्वर चिंतन करने से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। चिंतन करना ईश्वर के दरबार में हाजिरी देना है। यदि ईश्वर के दरबार मे हाजिरी देने से मोक्ष का सबसे बडा आनंद प्राप्त हो सकता है, तो ऐसा ही करने से अछूत-प्रथा का कितनी जल्दी नाश हो सकता है! ईश्वर के दरबार में हाजिरी देना अपनी पवित्रता बढाना है। आइए, हम प्रार्थना द्वारा अपने को पवित्र कर लें, जिससे हम अछूत-प्रथा ही नहीं हटा देंगे, बल्कि स्वराज्य भी शीघ्र सुलभ बना लेंगे।

पैशाचिक प्रथा

['यंग-इंडिया' में प्रकाशित महात्माजी के एक तर्क-पूर्ण लेख का यह अनुवाद है। इसमें गांधीजी ने बड़े तर्क-पूर्ण शब्दों में अछूत-प्रथा के समर्थकों को उनकी गहरी भूल समझाई है।—संपादक]

दक्षिण के एक देशी भाषा के पत्र में एक विद्वान् पंडित की लेखनी से लिखा एक लेख प्रकाशित हुआ है। एक मित्र ने उसका सारांश मेरे पास भेजा है। अछूत-प्रथा को जारी रखने के लिये पंडित के तर्कों का उन्होंने इस प्रकार सारांश लिया है—

(१) आदिशंकर ने एक बार एक चांडाल से यह कहा था कि वह उनसे दूर रहे, तथा त्रिशंकु को जब चांडाल बनने का शाप मिला, तब सभी लोग उसको त्यागने लगे। ये पौराणिक सत्य हैं, और इनसे यह प्रमाणित होता है कि अछूत-प्रथा कोई नई वस्तु नहीं है।

(२) आर्य-जाति से बहिष्कृत को ही 'चांडाल' कहते हैं।

(३) अछूत स्वयं अछूत-प्रथा के पाप के भागी है।

(४) कोई अछूत इसीलिये होता है कि वह पशु-हत्या

करता रहता है, रात-दिन उसे मांस, रक्त, हड्डी और मैले से काम रहता है।

(५) जिस प्रकार कसाईखाना, ताड़ीखाना और भठियारखाना समाज से अलग तथा बाहर रक्खा जाता है, उसी प्रकार अछूत को भी अलग रखना चाहिए।

(६) इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि अछूत को परलोक का सुख कभी नहीं प्राप्त होता।

(७) गांधी अछूतों को छू सकता है, इसी प्रकार वह उपवास भी कर सकता है। हम न तो उपवास कर सकते और न अछूतो को छू सकते है।

(८) मनुष्य की उन्नति तथा विकास के लिये अछूत-प्रथा या अछूतपन आवश्यक है।

(९) मनुष्य में आकर्षक शक्ति होती है। यह शक्ति दूध के समान है। अनुचित संपर्क से यह दूपित हो जायगी। यदि मुश्क और प्याज एक साथ रक्खा जा सकता है, तो ब्राह्मण और अछूत भी एक साथ मिलाए जा सकते हैं।

इन मुख्य तर्कों का सक्षेप मेरे सवाददाता ने भेजा है। अछूत-प्रथा अनेकों सिरवाली पिशाचिनी है, इसलिये यह आवश्यक है कि जब-जब पिशाचिनी सिर उठाए, उसका सामना किया जाय। पौराणिक कथाओं का वर्तमान परिस्थिति से क्या संबंध है, बिना यह जाने वे कहानियाँ बड़ी भयंकर हो जाती हैं। शास्त्रों में वर्णित हरएक लंबी-चौड़ी बात के अनुसार यदि हम अपने

आचरण का नियत्रण करें, तो वे बातें मौत के फंदे के समान हो जायँ। इन शास्त्रीय वातो से हमे केवल इतनी ही सहायता मिलती है कि हम मुख्य प्रश्नो पर तर्क-वितर्क कर सकते हैं। यदि किसी धार्मिक ग्रथ मे किसी प्रसिद्ध व्यक्ति ने ईश्वर तथा पुरुष के विरुद्ध पाप किया, तो इसका यह अर्थ नहा है कि हम भी वही पाप दुहराऍं। हमे केवल यही जान लेना—सीख लेना पर्याप्त है कि संसार में केवल एक ही वस्तु मुख्य है और वह सत्य है, तथा सत्य ही ईश्वर है। यह कहना असंगत है कि एक वार युधिष्ठिर भी ऐसे फंदे में फॅस गए थे कि उनको झूठ वोलना पड़ा था। यह जानना अधिक संगत है कि जब एक बार वह झूठ वोल गए, उसी समय उनको उसका दंड सहना पड़ा, और उनका महान् यश अथवा नाम भी उनकी रक्षा नहीं कर सका। इसीलिये हमें यह बतलाना असंगत है कि आदिशंकर ने एक बार चांडाल के स्पर्श से अपने को बचाया। हमारे लिये इतना ही जानना पर्याप्त है कि जिस धर्म मे अपने समान सबके साथ व्यवहार करने की शिक्षा दी जाती है, वह कभी एक भी जीव के साथ अमानवी व्यवहार बर्दाश्त नहीं कर सकता, एक समुदाय-भर की बात तो दूर रही। इसके अलावा हमारे पास सभी बातें भी तो मौजूद नहीं हैं, जिससे हम यह निर्णय कर सकें कि आदिशंकर ने क्या किया और क्या नहीं किया! इसके अलावा क्या हम शास्त्र में 'चांडाल'-शब्द के उपयोग का अर्थ जानते हैं? अवश्य इसके कई अर्थ हैं। एक अर्थ है पातकी।

पर यदि सभी पापियों को चांडाल या अछूत समझा जाने लगे, तो मुझे भय है कि हम सभी, स्वयं पंडित भी, इस अछूत के पाश में पड़ जायँगे। यह अछूत-प्रथा पुरानी है, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है। पर यदि यह प्रथा बुरी है, तो इसकी प्राचीनता की दुहाई इसका समर्थन नहीं करा सकती।

यदि अछूत आर्य-जाति के निकाले अंग हैं, तो यह जाति के लिये बड़ा कलंक की बात है। यदि आर्यों ने अप्रगतिशीलता के विचार से किसी समुदाय को जाति-बाहर कर दिया हो, तो कोई कारण नहीं कि बिना कारण का विचार किए, अब उस समुदाय की संतानों को भी वही दंड दिया जाय।

यदि अछूतों में भी आपस में 'अछूतपन' होता है, तो इसका यही कारण है कि दूषण सीमित नहीं, पर व्याप्त प्रभावशाली होता है। अछूतों में भी अछूत-प्रथा का होना संस्कृत हिंदुओं के लिये यह और भी आवश्यक बना देता है कि वे शीघ्राति-शीघ्र इस शाप से मुक्त हो जायँ।

यदि पशु-हत्या तथा मांस के व्यापार के कारण अथवा मल-मूत्र छूने से कोई अछूत होता है, तो हरएक डॉक्टर, हरएक दाई, हरएक ईसाई और मुसलमान को, जो भोजन या बलि के लिये पशु-हत्या करते हैं, अछूत हो जाना चाहिए।

यह तर्क कि कसाईखाने तथा भटियारखाने की तरह अछूतों को भी त्याग देना तथा अलग रखना चाहिए, उनके प्रति घोर अन्याय व्यक्त करता है। कसाईखाने और ताड़ीखाने अलग हैं,

तथा कर दिए जाते हैं, पर कसाई और ताड़ी बेचनेवाले अलग नहीं किए जाते। वेश्याओं को अलग कर देना चाहिए, क्योंकि उनका पेशा समाज के स्वास्थ्य के लिये हानिकर तथा दूषित है। अछूतों का पेशा समाज के लिये हानिकर नहीं, बल्कि उसके स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

यह कहना गुस्ताखी की हद है कि अछूत को परलोक की सुविधाएँ नहीं प्राप्त हो सकतीं! यदि परलोक में उन्हे स्थान न देना संभव है, तो यह भी संभव है कि अछूत-प्रथा के कट्टर समर्थक उन्हें वहाँ भी अलग करवा सकते हैं।

यह कहना जनता की आँखो में धूल झोकना है कि एक गांधी अछूत को छू सकता है, पर सब नहीं। मानो 'अछूत' की सेवा और उसे छूना इतना हानिकर है कि इसके लिये अछूत रूपी कीड़े से न प्रभावित होनेवाले व्यक्ति ही चाहिए। ईश्वर ही जानता होगा कि मुसलमानों को क्या दड मिलने-वाला है। अथवा उन ईसाई आदि समूहों को क्या दंड मिलेगा, जो अछूत-प्रथा में विश्वास नहीं रखते!

पाशविक आकर्षक-शक्ति का बहाना एकदम निरर्थक है। ऊँची जाति के सभी लोग मुश्क की तरह मधुर सुगधवाले नहीं होते, न सभी अछूतो के शरीर से दुर्गंध आती है। ऐसे हजारो अछूत हैं, जो सदैव 'ऊँची जाति' के कहे जानेवाले लोगों से सर्वांशतः महान् होते हैं।

यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि अछूत-प्रथा के विरुद्ध

लगातार पाँच वर्ष तक प्रचार करने पर भी ऐसे विद्वान् आदमी निकल आते हैं, जो इस अनैतिक तथा बुरी प्रथा का समर्थन करते हैं। एक विद्वान् भी अछूत-प्रथा का समर्थन कर सकता है, इससे इस प्रथा की महत्ता नहीं बढ़ती। केवल यह देखकर निराशा होती है कि केवल विद्या से ही चरित्र नहीं बनता, न बुद्धि-विभ्रम दूर होता है।

मैं पहले सुधारक हूँ

[६ अगस्त, १६३१ के 'यंग-इंडिया' में, अहमदाबाद में, हरिजनों के लिये सर चुनीभाई का मंदिर-द्वार खोलते समय के महात्मा गांधी के व्याख्यान का अधिकांश प्रकाशित हुआ था। इस व्याख्यान से लोगों की यह शंका निवारण हो जाती है कि गांधीजी वास्तव में हरिजन-सेवा को इतना महत्त्व क्यों देते हैं, तथा राजनीतिक कार्य से भी अधिक तत्परता के साथ यह कार्य क्यों कर रहे हैं।—संपादक]

अछूत कहलानेवाले भाइयो की सेवा मेरे लिये अन्य किसी राजनीतिक कार्य से कम नहीं है। अभी एक क्षण पूर्व मेरे दो पादरी मित्रो ने भी यही भेद बतलाया था, फलतः मैंने उन्हे हल्की झिड़की भी दी थी। मैंने उन्हे समझाया कि मेरा समाज-सुधार का कार्य राजनीतिक कार्य से किसी प्रकार कम या उससे हेय नहीं है। सच तो यह है कि जब मैंने यह देखा कि विना राजनीतिक कार्य के सामाजिक सेवा नहीं हो सकती, मैंने इसे अपनाया, और उसी सीमा तक, जहाँ तक वह मेरी समाज-सेवा की सहायता कर सकता है। इसीलिये मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे लिये सामाजिक सुधार अथवा आत्मशुद्धि

का यह कार्य शुद्ध राजनीतिक कहलानेवाले कार्य से कहीं अधिक प्रिय है।

हरिजन-सेवा

'अछूतों' की सेवा अथवा उनके साथ न्याय करने का क्या अर्थ है? इसका केवल यही अर्थ है कि सदियों से मियाद पूरी हो जानेवाले कर्ज को चुका देना, तथा और युगों से हम जिस पाप के भागी बन रहे हैं, उसका कुछ प्रायश्चित्त करना। अपने ही रक्त-मांस के संबंधी का ऋण न चुकाना हमारा पाप है, और उसका अपमान करना। हमने अपने इन अभागे बंधुओं के प्रति ऐसा ही व्यवहार किया है, जैसा एक नर-पिशाच अपने अन्य भाइयों (मनुष्यों) के साथ करता है। और, हमने अछूतोद्धार का जो कार्य-क्रम बनाया है, वह हमारे महान् पैशाचिक अन्याय का कुछ अंशों में प्रायश्चित्त-मात्र है। चूंकि यह कार्य मूलतः प्रायश्चित्त अथवा आत्मशुद्धि की दृष्टि से किया जा रहा है, अतएव किसी भी दशा में इसमें भय अथवा पक्षपात की संभावना नहीं हो सकती। यदि हम इस भाव से यह कार्य करते हैं कि अछूत दूसरे मत को ग्रहण कर लेंगे, या वे हमारे ऊपर अपना क्रोध उतारेंगे, या हम एक राजनीतिक चाल के रूप में यह कार्य प्रारंभ करते हैं, तो हम हिंदू-धर्म के प्रति अपना अज्ञान प्रकट करते या युगों से हमारी सेवा करनेवाले ऋषि-मुनियों का अपमान करते हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैंने ही इस प्रश्न को कांग्रेस-कार्य-क्रम में इतना प्रमुख स्थान

दिलाया, तथा मुझ पर. आक्षेप करनेवाला व्यक्ति यह कह सकता है कि मैंने अछूतों के लिये चारा फेका था। इसका मै तुरत यही उत्तर देता हूँ कि यह आक्षेप निराधार है। अपने जीवन के बहुत प्रारंभिक काल में ही मैं यह महसूस कर चुका था कि जिन्हें अपने हिंदू होने का विश्वास है, यदि वे हिंदू-धर्म पर गर्व करते है, तो उनको इस कुप्रथा को मिटाकर प्रायश्चित्त करना चाहिए। और, चूँकि कांग्रेस में हिंदुओ का बहुमत था, और उस समय राष्ट्र के सामने जो कार्य-क्रम रक्खा गया था, वह आत्मशुद्धि का था, अतएव मै इस प्रश्न को कांग्रेस-कार्य-क्रम में इस भाव से आगे ले आया कि जब तक हिंदू इस धब्बे को मिटाने के लिये तैयार नहां हैं, वे अपने को स्वराज्य के योग्य नहीं समझ सकते। इस विश्वास की सार्थकता मेरे सम्मुख प्रत्यक्ष है। यदि अछूत प्रथा का दाग लिए हुए ही आपको स्वाधिकार प्राप्त हो गया, तो, मेरा विश्वास है, आपके 'स्वराज्य' में अछूतों की और बुरी दशा होगी, क्योंकि इसका सीधा कारण यह होगा कि अधिकार के मद मे हमारी-आपकी दुर्बलता तथा कमजोरियाँ और भी अधिक कठोर हो जायँगी। संक्षेप में, मेरी यही स्थिति है, सफाई है, और मेरा सदैव यह मत रहा है कि यह 'आत्मशुद्धि' स्वराज्य के लिये अनिवार्य है। मैं आज इस तथ्य पर नहीं पहुँचा हूँ। जिस समय से मैंने स्वराज्य के विषय में विचार करना शुरू किया, उसी समय से मेरा यह मत रहा है। इसीलिये मै ईश्वर

को धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे इस अवसर पर उपस्थित होने योग्य बनाया। मैंने सदैव ऐसे कार्य के अवसर को मूल्यवान् समझा है, और इसीलिये ऐसे अवसरों पर मैंने 'राजनीतिक' कहे जानेवाले कार्यों को ताक पर रख दिया है। मैं जानता हूँ, जिनको 'राजनीतिक' कहलानेवाली उत्तेजक वस्तु ही आकर्षित करती है, वे मुझ पर हँसेंगे, पर यह कार्य मेरे हृदय के सबसे निकट तथा सबसे प्रिय है।

जब परीक्षा का समय होगा!

इस मंदिर को खोलकर आपने (श्रीमती चुन्नीभाई) अपने कर्तव्य का पालन तथा आत्मशुद्धि का जो कार्य किया है, उसके लिये आपको बधाई देने की आवश्यकता नहीं। किंतु मुझे, जहाँ तक मैं सोच सकता हूँ, बधाई देने का अवसर शीघ्र ही उपस्थित होगा। इस मंदिर के ब्राह्मण पुजारियों ने परिस्थिति को स्वीकार कर लिया है, पर यह संभव है, वे एक दिन आपके विमुख हो जायँ, और यह कहें कि उनसे मंदिर के पूजा-पाठ से कोई सरोकार नहीं है। यह भी संभव है कि समूचा ब्राह्मण-समुदाय, समग्र सनातनी नागर-समुदाय आपके विरुद्ध षड्यंत्र कर ले। उस समय भी मैं आशा करता हूँ, और प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने निश्चय पर दृढ़ रहेंगे, और यह सोचकर प्रसन्न होंगे कि उसी दिन मंदिर में शिव की पत्थर की मूर्ति में वास्तविक जीवन का, ईश्वर की जीवित सत्ता का संचार हो गया है। आपके प्रायश्चित्त की यह चरम

सीमा होगी। और, जिस दिन आपका समाज इस आवश्यक आत्मशुद्धि का कार्य करने के लिये आपको जाति वाहर कर देगा, मैं आपको हृदय से वधाई दूँगा।

हिंदुओं के लिये

आज जो यहाँ पर उपस्थित हैं, उनसे मैं कह देना चाहता हूँ कि हमारे सिर पर पाप का जो बोझ लदा हुआ है, उसी से हम स्वराज्य नहीं प्राप्त कर रहे हैं। यदि सभी 'छूत' कहलाने-वाले हिंदू अपने 'अछूत' कहलानेवाले भाइयों के प्रति अन्याय का प्रायश्चित्त करें, तो वे देखेंगे कि स्वराज्य आप-से-आप हमारे हाथों में आ जाता है। और, कृपा कर यह भी समझ लें कि केवल शारीरिक छुआछूत दूर करने से ही काम नहीं चल सकता।

अछूत-प्रथा के अन्त होने का अर्थ है जन्म से ही किसी को वड़ा छोटा मानने के भेद-भाव को मिटा देना। वर्णाश्रम-धर्म वड़ा सुंदर धर्म है, पर यदि इसका उपयोग सामाजिक वड़-प्पन के प्रतिपादन में होता है, तो यह वड़ी भयंकर वात हो जायगी। अछूत-प्रथा का अंत केवल इस जीवित विश्वास के आधार पर होना चाहिए कि ईश्वर की दृष्टि में सव लोग एक है, तथा स्वर्ग में बैठा परमपिता हम सवके साथ वरावर तथा समान रूप से न्याय करेगा।

यह तो एक आदमी का निजी मंदिर है। यदि इसका द्वार अछूतों के लिये खुल जाता है, तो सार्वजनिक मंदिर का द्वार कितने

समय तक बंद रहेगा। आज का अवसर हरएक हिंदू की आँख खोलनेवाला होगा। यह शुभ मुहूर्त उस क्रिया को प्रारंभ करता है, जिसके द्वारा सभी हिंदू-मंदिरों के द्वार अछूतों के लिये खुल जायँगे, किंतु अन्य बातों के समान इस दशा में भी मैं ज़ोर-ज़बर्दस्ती से बचने का अनुरोध करूँगा। कुछ समय पूर्व हम बड़ी जड़ता-पूर्वक इस प्रथा से चिपटे हुए थे, किंतु आज हम इसके प्रति उपेक्षित-से हो रहे हैं। वह समय दूर नहीं, जब यह उपेक्षा ऐसी जागृति में परिणत हो जायगी, जब हम आत्मशुद्धि के कर्तव्य-भाव से प्रेरित होकर स्वेच्छया यह कार्य करने लगेंगे। पंद्रह वर्ष पूर्व इस प्रकार की उपेक्षा या ऐसी दशा को बर्दाश्त कर लेना भी असंभव था। हमें यह आशा करनी चाहिए, तथा इसके लिये प्रार्थना करना चाहिए कि अब दूसरा पग होगा इच्छा-पूर्वक आत्मशुद्धि का यह कार्य करना।

अभी कल ही मेरे एक मित्र ने मुझे सलाह दी थी कि अछूत अथवा 'अंत्यज' के लिये 'हरिजन' शब्द का उपयोग करना चाहिए। सनातनी नागर ब्राह्मण-समाज के श्रीनरसिंह मेहता-नामक महान् साधु ने अपने समाज के मत की अवहेलना कर, अंत्यजों को अपनाकर, उनके लिये सर्व-प्रथम इस शब्द का उपयोग किया था। इतने बड़े साधु के प्रयोग से शुद्ध किए हुए शब्द को अपनाने में मुझे बड़ा हर्ष होता है, पर मेरे लिये इसका अर्थ आपकी कल्पना से कहीं अधिक गंभीर है। मेरे

लिये, अपनी तुलना में, 'अंत्यज' वास्तव में 'हरिजन' है—ईश्वर का पुरुष है, और हम 'दुर्जन' हैं, क्योंकि हमें आराम तथा सफाई से रखने के लिये वह परिश्रम करता और अपने हाथ को गंदा करता है। हमें तो उसे दबाने में ही आनंद आता है। इन अंत्यजों के सिर जिस दुर्बलता तथा दूषण का हम दोष मढ़ते है, उसकी पूरी जिम्मेदारी हमारे सिर है। हम अब भी हरिजन हो सकते हैं, पर इसके लिये हमें पहले उनके प्रति अपने अन्याय के लिये हार्दिक पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

दलित जातियाँ

[हरिजनों के दुःखों का निबटारा क्या इस बात से हो जायगा कि वे हिंदू-धर्म छोड़ दें ? अन्य धर्मवाले हाथ बढ़ाए हरिजनों को अपनाने के लिये तैयार हैं। क्या वे उनका उद्धार कर लेंगे ! इस प्रश्न का बड़ा सुंदर उत्तर गांधीजी के 'यंगइंडिया' में प्रकाशित एक लेख 'दलित जातियाँ' से मिल जाता है । पाँचवाँ लेख उनके मद्रास के असहयोग-काल के एक व्याख्यान का अंशात्मक अनुवाद है । असहयोग, स्वराज्य तथा हरिजन-उद्धार का कार्य-क्रम गांधीजी ने किस ख़ूबी से एक संबद्ध कार्य के रूप में समझाया है ।—संपादक]

विवेकानंद पंचमों को 'दबाई हुई' जातियाँ कहा करते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि विवेकानंद का यह विशेषण बिलकुल उपयुक्त है। हमने उनको दबाया है, फलतः हम भी दबाए गए हैं। गोखले के शब्दों में—न्यायी ईश्वर ने हमें 'साम्राज्य का पंचम' बनाकर हमारे अन्याय का दंड दिया है। हैरान और रुष्ट होकर एक संवाददाता मुझसे कातरता-पूर्वक पूछता है कि मैं पंचमों के लिये क्या कर रहा हूँ। "अँगरेज़ों से उनका रक्त-रंजित हाथ साफ़ करने के लिये कहने के पहले क्या हम हिंदुओं को ख़ून से सना अपना हाथ नहीं धो डालना चाहिए।" यह सामयिक

तथा उचित प्रश्न है। यदि गुलाम राष्ट्रों का कोई व्यक्ति इन दबाई जातियो को अपने उद्धार के पहले मुक्त कर दे, तो मै इसे पसंद करूँगा। मै आज ही ऐसा करने के लिये तैयार हो जाऊँगा। किंतु यह एक असभव कार्य है। एक दास को इतनी भी स्वाधीनता नहीं होती कि वह कोई उचित कार्य कर सके। मेरे लिये यह सर्वथा न्यायोचित है कि भारत में विदेशी वस्त्रो का आना रोकूँ, पर ऐसा करने की मेरे मे क्षमता नहीं है। यदि मेरे पास सचमुच राष्ट्रीय व्यवस्थापक सभा होती, तो मै हिंदू-गुस्ताखी का जवाब दबाई जातियो के लिये ही खासतौर से उपयोग में लाने के लिये अच्छे और खास कुएँ बनवाकर देता, उनके लिये अनेक और कहीं अच्छे स्कूल बनवा देता, इस प्रकार दबाई जाति का एक भी व्यक्ति ऐसा न रह जाता, जिसके बच्चे की शिक्षा के लिये स्कूल का अभाव होता। पर मुझे अच्छे अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

तब तक क्या ये दलित जातियाँ अपने भाग्य पर छोड़ दी जायँगी, ऐसा हर्गिज़ न होगा। मुझसे जहाँ तक बन पड़ता है, मैं हर प्रकार से अपने पंचम भाई की सेवा करता आया हूँ, और करूँगा।

राष्ट्र के इन उत्पीड़ित व्यक्तियों के लिये केवल यही मार्ग खुला हुआ है। धैर्य छोड़कर वे गुलामों की सरकार की सहायता माँग सकते है। यह सहायता उन्हे मिल जायगी, पर वे जलती कढ़ाई में से अग्नि में गिर जायँगे। आज वे

दासों के दास हैं। सरकारी सहायता माँगने पर उनसे उन्हा के संबंधियों तथा साथियो को दबाने के लिये कहा जायगा। स्वय उनके प्रति पाप किए जाने के बदले वे स्वय पापी बन जायँगे। मुसलमानो ने ऐसा करने की चेष्टा की, और असफल हुए। उन्होंने यह देख लिया कि वे पहले से भी अधिक खराब हालत मे हैं। अज्ञानता-पूर्वक सिक्खो ने भी वही किया, और वे भी लाभ उठाने में असफल रहे। आज भारत मे सिक्खो के समान कोई भी असंतुष्ट समुदाय नहा है। इसलिये सरकारी सहायता से यह समस्या हल नहीं हो सकती।

दूसरा उपाय यह हो सकता है कि इस समय दलित हिंदू-समाज को छोड़कर मुसलमान या ईसाई हो जायँ। यदि धर्म-परिवर्तन से इहलौकिक सुख प्राप्त हो सकता हो, तो मैं निस्संकोच इसकी सलाह देने के लिये तैयार हूँ। पर धर्म तो हृदय की वस्तु है। कोई भी शारीरिक असुविधा धर्म-परित्याग का कारण नहीं बन सकती। यदि पचमों के साथ पाशविक व्यवहार हिंदू-धर्म का अग होता, तो वह उन्हीं के लिये, पर मेरे-ऐसे के लिये महान् कर्तव्य होता, जो कि धर्म ऐसी वस्तु को भी अंध-विश्वास की वस्तु बनाकर उसके पवित्र नाम की ओट में हरएक पाप को छिपाना नहीं चाहते। किंतु मेरा तो दृढ विश्वास है कि अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म का अग नहीं है। यह उसका मैल है, जिसको हर प्रकार से चेष्टा कर मिटा देना चाहिए। और, इस समय ऐसे हिंदू-सुधारकों की बहुत

बड़ी संख्या मौजूद है, जो हिंदू-धर्म से इस धब्बे को मिटा देने के लिये तुल गए हैं। अतः मेरा कहना है कि धर्म-परिवर्तन इस समस्या को किसी प्रकार भी नहीं निबटा सकता।

पंचम

[मद्रास में पंचमों की समस्या का निबटारा कैसे हो। उनके प्रति बड़ी निर्दयता का व्यवहार होता है। गांधीजी का विचार नीचे दिया जाता है।—संपादक]

मद्रास-प्रांत के समान अछूतो के प्रति और कहीं भी इतनी निर्दयता का व्यवहार नहीं होता। उसकी छाया-मात्र से ही ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है। वह ब्राह्मणो की सडक से जा भी नहीं सकता। अब्राह्मण भी उसके साथ कोई अच्छा सलूक नहीं करते। इन दो के बीच में, पंचम कहलानेवाला अछूत पिसकर भर्ता हो जाता है। और, फिर भी मद्रास ऊंचे मंदिरो और प्रगाढ धार्मिक भक्ति की भूमि बना है। लंबा टीका, लंबी चुटिया तथा मुंडे सिर लोग ऋषियो के समान मालूम होते हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन बाहरी दिखावे मे उनके धर्म का कोष खाली हो गया है। शंकर और रामानुज-ऐसे धर्म-ध्वजियो को उत्पन्न करनेवाली भूमि में पंचमो के प्रति ऐसी डायरशाही समझ मे नहीं आती। पर भारत के इस भाग में. अपने ही संबंधियो के प्रति, ऐसा दुर्व्यवहार देखते हुए भी— ऐसा शैतानी व्यवहार देखते हुए भी—इन दक्षिणात्यो में मेरा विश्वास बना ही है। मैंने उनकी प्राय सभी बड़ी सभाओं में

साफ-साफ कह दिया है कि जब तक हम अपने समाज से इस शाप को नहीं मिटा देते, स्वराज्य नहीं हो सकता।

मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया है कि संपूर्ण संसार के समाज मे हमारे साथ कोढ़ी के समान व्यवहार इसीलिये होता है कि हम अपनी ही जाति के पाँचवें भाग के साथ ऐसा ही सलूक करते हैं। असहयोग अंगरेजों में ही नहीं, हममें भी हृदय-परिवर्तन के लिये एक प्रार्थना-मात्र है। अवश्य मैं तो पहले अपने लोगो मे, और फिर, समय पाकर, अँगरेजो मे हृदय-परिवर्तन की आशा करता हूँ। ऐसा राष्ट्र जो सदियो के अभिशाप को एक वर्ष में फेंक सकता है, ऐसा राष्ट्र जो वस्त्रो के समान मदिरा के व्यसन को त्याग सकता है, ऐसा राष्ट्र जो अपने मूल उद्योग को पुनः अपना सकता है तथा एक वर्ष में ६० करोड रुपए का कपड़ा केवल अपने फालतू समय मे तैयार कर सकता है, अवश्य ही बदला हुआ राष्ट्र कहलाएगा। उसका परिवर्तन संसार पर प्रभाव डालेगा। खिल्ली उड़ानेवाले के लिये भी वह दैवी सत्ता तथा प्रतिभा का विश्वासोत्पादक प्रदर्शन कर सकता है। और, इसीलिये मैं कहता हूँ कि यदि भारत का इस प्रकार परिवर्तन हो सकता है, तो संसार मे कोई भी शक्ति उसके स्वराज्य के अधिकार को अस्वीकार नहीं कर सकती। भारत के क्षितिज मे चाहे कितना ही घना बादल क्यो न एकत्रित हो जाय, मैं साहस-पूर्वक यह भविष्यवाणी करता हूँ कि जिस क्षण भारत को 'अछूतो' के प्रति अपने

अत्याचार पर खेद होगा, तथा वह विलायती कपड़े का वहिष्कार कर लेगा, उसी समय वही अंगरेज-अफ़सर, जिनका हृदय कठोर हो गया है, एक स्वतंत्र तथा साहसी राष्ट्र के रूप में उसका स्वागत करेंगे।

और, मेरा विश्वास है, यदि हिंदू चाहें, तो वे 'पंचम' कहलानवालों को मताधिकार दे सकते हैं, और जो अधिकार वे स्वयं अपने लिये चाहते हैं, उन्हें भी अपनी ओर से दे सकते हैं—मैं ऊपर कही बातों में भी पूरा विश्वास रखता हूं। यह हृदय तथा दशा-परिवर्तन किसी पूर्व-निश्चित तथा यंत्रीय कार्य-क्रम से नहीं हो सकता। यह तभी संभव है, जब ईश्वर की कृपा होगी। यह कौन अस्वीकार कर सकता है कि परमात्मा हमारे हृदय में अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न कर रहा है। अस्तु, हर-एक स्थान पर, हरएक कार्य-कर्ता का यह कर्तव्य है कि अछूत-बंधुओं से मित्रता का प्रतिपादन करे, और अहिंदू हिंदुओं से यह वकालत करें कि वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, शंकराचार्य तथा रामानुज द्वारा वर्णित हिंदू-धर्म में किसी भी व्यक्ति को, चाहे वह कितना ही पतित क्यों न हो, अछूत के समान व्यवहार करने का कोई अधिकार नहीं। हरएक कार्यकर्ता को नम्रतम रूप में सनातनियों से यह अनुरोध करना चाहिए कि यह निंद्य भेद अहिंसा के भाव का उलटा है।

एक भयंकर सिद्धांत

[सत्याग्रह तथा दलितोद्धार क्या संबंध है ? जड़ सनातनियों की जड़ता का किस प्रकार उत्तर दिया जाय ! सत्याग्रह से ? गांधीजी का सत्याग्रह क्या इस आंदोलन में भी लागू होता है ? ये प्रश्न इस सुंदर लेख से सुलझ जायँगे । ट्रावंकोर में गांधीजी ने उन दिनों एक व्याख्यान दिया था, जब वहाँ राजमाता महारानी का शासन था । यह लेख उसी का अधिकांश अनुवाद है ।—संपादक]

भारत के इस अत्यत सुंदर भाग में दूसरी बार आने पर मुझे कितना हर्ष हो रहा है, फिर भी यह सोचकर कि भारत के अन्य भागो मे सबसे अधिक अछूत-भाव यहीं पर है, मुझे इतना दुःख होता है कि मैं उसे छिपा नहीं सकता। मुझे यह सोचकर बड़ा अपमानित होना पड़ता है कि एक प्रगतिशील हिंदू-राज्य में अछूतो के प्रति जो असुविधाएँ है, उनके स्पर्श तथा दृष्टि-मात्र से ही जो दोष लगता है, उतनी भयंकर दशा और कहीं भी नहीं है। मैं पूरी जिम्मेदारी के साथ यह कहता हूँ कि यह अछूत-प्रथा एक ऐसा अभिशाप है, जो हिंदू-धर्म की जीवनी शक्ति को खाए जा रही है। और, मै प्रायः यह महसूस करता हूँ कि जब तक हम समुचित रीति से खबरदारी न करे, और अपने बीच में से इस शाप को न मिटा दें, हिंदू-धर्म के

ही नाश हो जाने का डर बना रहेगा। इस तर्क तथा बुद्धि के युग में, इस चतुर्दिक् यात्रा के युग में, सब धर्म-मजहबों के तुलनात्मक अध्ययन के युग में भी ऐसे आदमी पाए जा सकते हैं, जिनमें से कुछ पढ़े-लिखे भी हों, जो इस भयंकर सिद्धांत का समर्थन करते हों कि एक भी ऐसा व्यक्ति हो सकता है, जो अछूत हो, अपने पास आने देने लायक न हो, या देखने योग्य न हो. यह मेरी कल्पना के परे की बात है। हिंदू-धर्म के एक तुच्छ विद्यार्थी की हैसियत से तथा हिंदू-धर्म के अनुशासनों का अक्षरशः पालन करनेवाले की हैसियत से मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि इस भीषण सिद्धांत के समर्थन में मुझे कहीं कोई बात नहीं मिलती। हमको यह विश्वास कर अपने को धोखा नहीं देना चाहिए कि संस्कृत में जो कुछ भी लिखा और छपा है, वही शास्त्र है, तथा उसका पालन करने के लिये हम बाध्य हैं। जो नैतिकता के मौलिक सिद्धांतों के विरुद्ध हो सकता है, जो तर्कशील बुद्धि के विपरीत है, उसे शास्त्र नहीं कहा जा सकता, चाहे वह कितनी ही पुरानी बात क्यों न हो। मेरे इस कथन की पुष्टि के लिये वेद, गीता तथा महाभारत से काफी समर्थन मिलता है। इसीलिये, आशा है, ट्रावंकोर की उन्नतिशील शासिका के लिये यह संभव होगा कि वह अपने शासन-काल में ही इस भूमि से इस अभिशाप को मिटाएगी। इससे बढ़कर उदार तथा महान् बात और क्या हो सकती है कि एक स्त्री कहे कि उसके शासन-काल में सदियों की दासता से उत्पीड़ित इन 'अछूतों' को पूरी स्वाधीनता दे दी गई।

किंतु मै उनकी तथा उनके मंत्रिगणो की कठिनाइयो को भी जानता हूँ। चाहे कितनी ही निरंकुश सरकार क्यो न हो, ऐसा सुधार करने मे डरती और सतर्क रहना चाहती है, किंतु बुद्धिमान् सरकार ऐसे सुधारों के पक्ष में आंदोलन का स्वागत करेगी, पर मूढ सरकार ऐसे आंदोलनो को दबाने के लिये हिंसात्मक दमन का प्रयोग करेगी। किंतु वाइकोम सत्याग्रह के अपने निजी अनुभव से मै यह कह सकता हूँ कि तुम्हारे यहाँ एक ऐसी सरकार है, जो ऐसे आंदोलन को सहन ही नहीं करेगी, किंतु उसका इसलिये स्वागत करेगी कि ऐसा सुधार करने मे उसी के हाथ मजबूत हो जायँ। इसलिये वास्तविक कार्य तथा उसका श्रीगणेश ट्रावकोर की जनता के हाथ में है, और वह भी 'अछूत' या अनुचित रूप से 'अवर्ण' कहलानेवाले हिंदू भाइयो के हाथ में नहीं। मेरे लिये तो 'अवर्ण' हिंदू का नाम ही गलत है, और हिंदू-धर्म के प्रति अपवाद है। अधिकांश दशाओ मे इसका निदान या ओषधि, श्रीगणेश तथा प्रारंभ 'सवर्ण' कहलानेवाले हिंदुओं के हाथ में है, जिन्हें अछूत-प्रथा के पाप से अपने को मुक्त करना है। किंतु मै तुमको यह बतला देना चाहता हूँ कि निष्क्रिय रूप से केवल यह विश्वास-मात्र ही पर्याप्त नहीं है कि अछूत-प्रथा एक पाप है—अपराध है। जो निष्क्रिय रूप से किसी अपराध को अपने सामने होते हुए देखता रहता है, कानूनन् वह उसमें क्रियाशील रूप से भाग लेनेवाला समझा जाता है। इसलिये आपको अपना

आंदोलन हर प्रकार से जायज तथा वैध रूप से चलाना चाहिए। यदि मेरी आवाज उन तक पहुँच रही है, उन्हें चाहिए कि मेरे संदेश को उन ब्राह्मण-पुरोहितों के पास तक पहुँचा दें, जो इस आवश्यक तथा शीघ्र वाञ्छनीय सुधार का विरोध कर रहे हैं। यह ऐतिहासिक सत्य होते हुए भी दुःखद सत्य है कि वहां धर्म-पुरोहित जिनको धर्म का रक्षक होना चाहिए था, उसके भक्षक तथा विनाशक बन रहे हैं। ट्रावनकोर तथा अन्य स्थानों में मैं अपनी आँखों के सामने उन्हीं ब्राह्मण-पुरोहितों को, जो धर्म की ध्वजा तथा रक्षक होते, अज्ञान या उससे भी बुरी वस्तु के कारण, धर्म का नाश करते देख रहा हूँ। जब वे अपने समूचे पांडित्य का उपयोग एक भयंकर अंध-विश्वास तथा भीषण भूल के समर्थन के लिये करते हैं, उनकी विद्या धूल में मिल जाती है। इसलिये मैं आशा करता हूँ कि समय रहते वे समय की गति पहचान लेंगे, तथा वर्तमान स्थिति के साथ—जो इच्छया या अनिच्छया सत्य के मार्ग की ओर हमें लिए जा रही है—चलने की चेष्टा करेंगे। संसार के सभी धर्म, चाहे वे अन्य बातों में भिन्न हों, सर्व-सम्मत रूप से यह घोषित करते हैं—

"सत्यमेव जयते नानृतम्"

सुधारकों से

किन्तु मैं सुधारकों को भी सावधान कर देना चाहता हूँ कि उनका मार्ग तंग और दुर्गम है, अतएव यदि वे धैर्य छोड़ देंगे, और न्याय-पथ से विचलित हो जायँगे, तो वे अपनी ही हानि करेंगे, और

सुधार के मार्ग में बाधा पैदा कर देंगे। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि मैंने सुधारको के हाथ में एक अमूल्य तथा अजेय अस्त्र सत्याग्रह के रूप में दे दिया है। यदि वह ईश्वर में विश्वास रखता है, उसे अपने मे विश्वास है, अपने उद्देश्य की पवित्रता मे विश्वास है, तो वह कभी हिंसात्मक न होगा। अपने अत्यत भयकर शत्रु के प्रति भी—उस पर अन्याय, अज्ञान, हिंसा का दोष लगाते हुए भी—हिंसक भाव न धारण करेगा। मै विरोध का भय किए विना ही कह सकता हूँ कि हिंसा द्वारा कभी सत्य का प्रतिपादन नहीं किया जा सका है, इसलिये सत्याग्रही हिंसात्मक शक्ति द्वारा नही, प्रत्युत प्रेम और मत-परिवर्तन द्वारा अपने कथित शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। उसकी विधि सदैव उदार होगी तथा वह उदारचेता होगा। वह कभी अतिशयोक्ति का अतिक्रमण न करेगा। और, चूँकि अहिंसा का दूसरा नाम प्रेम है, उसका एकमात्र अस्त्र है आत्मपीड़ा। और, सर्वोपरि अछूत-प्रथा उठाने के आंदोलन मे—जो मेरी सम्मति मे मूलतः एक धार्मिक तथा आत्मशुद्धि का कार्य है—घृणा, जल्दबाजी, अविचारशीलता तथा अतिक्रमण के लिये स्थान ही नहीं है। चूँकि प्रत्यक्ष कार्य में सबसे अमोघ अस्त्र सत्याग्रह है, इसलिये सत्याग्रह की शरण लेने के पूर्व सत्याग्रही अन्य हरएक उपाय का प्रयोग कर लेता है। इसलिये वह निरंतर तथा प्रायः वैध अधिकारियों के पास जायगा, सर्वजन-सम्मति को अपनाने की चेष्टा करेगा, शांत तथा व्यवस्थित चित्त से जो सुनना चाहेगा,

उसके सामने अपना विचार प्रकट करेगा, और जब इन सब विधियों को असफल पावेगा, वह सत्याग्रह करेगा। पर जब उसकी अन्तरात्मा उसे सत्याग्रह के लिये प्रेरित करेगी, और वह उस पर उतारू हो जायगा, वह अपना सर्वस्व छोडकर उस पर उतर पड़ेगा, और तब पीछे लौटना नहीं हो सकता। किंतु मुझे आशा करनी चाहिए कि इस प्रांत में जनता के लिये इतने प्रत्यक्ष अपराध को मिटाने के लिये सत्याग्रह की आत्मपीड़ाएँ न झेलनी पडेंगी।

हिंदू-धर्म का अभाव

[अछूतोद्धार की मार्मिकता क्या है ? इसका सत्याग्रह से क्या संबंध है ? साथ ही, कितने शांत रूप में हरिजन-सेवा-कार्य करना चाहिए, यदि यह समझना हो, तो ट्रिवेंड्रम में आज से ६ वर्ष पूर्व महात्माजी ने जो व्याख्यान दिया था, जिसे हम प्रकाशित कर रहे हैं, पढ़ना अनिवार्य है ।—संपादक]

ट्रावंकोर मे एक बार आने के बाद मैं इस मोहक भूमि में पुनः-पुनः आने के अवसर की प्रतीक्षा करता रहता था । इसके अत्यत रमणीक दृश्य, ट्रावकोर मे कन्याकुमारी की पर्वत-मालिका और ट्रावंकोर की स्त्रियो की सादगी तथा स्वाधीनता ने मेरे पहले आगमन के समय ही मेरा हृदय मोहित कर लिया था । किंतु इन भावो और अवस्थाओ के आनंद को यह सोचकर गहरा धक्का पहुँचता है कि इस अत्यत प्राचीन हिंदू-राज्य मे, जिसे शिक्षा मे प्रगति की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, अछूत-प्रथा अत्यत भयंकर रूप में वर्तमान है । और, इस दशा में मुझे सदैव सबसे अधिक पीडा इसीलिये होती है कि मै अपने को पक्का हिंदू समझता हूँ, और अपने हृदय को हिंदुत्व के भाव से ओत-प्रोत देखता हूँ । हम आज अछूत-प्रथा का जैसा पालन करते हैं, और उस पर जैसा

हिंदू-धर्म का अभाव

[अछूतोद्धार की मार्मिकता क्या है ? इसका सत्याग्रह से क्या संबंध है ? साथ ही, कितने शांत रूप में हरिजन-सेवा-कार्य करना चाहिए, यदि यह समझना हो, तो ट्रिवेंड्रम में आज से ८ वर्ष पूर्व महात्माजी ने जो व्याख्यान दिया था, जिसे हम प्रकाशित कर रहे हैं, पढ़ना अनिवार्य है।—संपादक]

ट्रावंकोर में एक बार आने के बाद मैं इस मोहक भूमि में पुनः-पुनः आने के अवसर की प्रतीक्षा करता रहता था। इसके अत्यंत रमणीक दृश्य, ट्रावंकोर में कन्याकुमारी की पर्वत-मालिका और ट्रावंकोर की स्त्रियों की सादगी तथा स्वाधीनता ने मेरे पहले आगमन के समय ही मेरा हृदय मोहित कर लिया था। किंतु इन भावों और अवस्थाओं के आनंद को यह सोचकर गहरा धक्का पहुँचता है कि इस अत्यंत प्राचीन हिंदू-राज्य में, जिसे शिक्षा में प्रगति की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, अछूत-प्रथा अत्यंत भयंकर रूप में वर्तमान है। और, इस दशा में मुझे सदैव सबसे अधिक पीड़ा इसीलिये होती है कि मैं अपने को पक्का हिंदू समझता हूँ, और अपने हृदय को हिंदुत्व के भाव से ओत-प्रोत देखता हूँ। हम आज अछूत-प्रथा का जैसा पालन करते हैं, और उस पर जैसा

राज्य और प्रजा का कर्तव्य

किंतु कोई भी सरकार सुधार के मामले में अगुआ नहीं बन सकती। प्रकृतितः सरकार अपनी शासित प्रजा की प्रकटित इच्छाओं और भावों का अर्थ निकालनेवाली और उनको कार्य-रूप में परिणत करनेवाली हुआ करती है। और, चाहे कितनी ही निरंकुश सरकार क्यों न हो, वह ऐसा सुधार नहीं करेगी, जो उसकी प्रजा हजम न कर सके। किंतु इस एक बात का संतोष हो जाने पर मैं ग्राम-ग्राम में हरएक के सामने इस सुधार का संदेश ले जाने से नहीं रुकूँगा। सुनियमित, निरंतर आंदोलन ही स्वस्थ प्रगति की आत्मा होती है, और मैं तब तक सरकार को चैन न लेने दूँगा, जब तक यह सुधार न चालू हो जाय। पर सरकार को चैन न लेने देने का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि सरकार से छेड़खानी की जायगी। बुद्धिमान् ऐसे आंदोलन की सहायता, समर्थन तथा प्रोत्साहन का स्वागत करती है, जिससे स्वयं वह सुधार चालू कर सके, जिसे वह चाहती है। मुझे मालूम है, जब मैं पिछली मर्तबा यहाँ पर आया था, मुझसे कहा गया था कि यहाँ सवर्ण या छूत हिंदू एक प्रकार से उत्सुक हैं कि इस रूप में यह सुधार चालू कर दिया जाय। पर मुझे कहते संकोच होता है कि सवर्ण हिंदू अपनी इच्छा को दबाए सोते रहे। उन्होंने अपनी इच्छा को ठोस रूप नहीं दिया। मेरा विश्वास है कि राज्य के हरएक हिंदू का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह

अपने इस कर्तव्य के प्रति सचेत हो जाय, और अपने आत्मीय भाइयों का भी उनके कर्तव्य का ध्यान दिलाकर उनकी तंद्रा दूर कर दें। मुझे जरा भी संदेह नहीं कि यदि सवर्ण हिंदू एक आवाज से अपनी कामना प्रकट कर दें, इस अछूत-प्रथा का भूत तुरत भाग जायगा। इसलिये हमें अपनी तंद्रा और आलस्य को सरकार के सिर मढ़ना अनुचित है।

पर हर समुदाय और देश में सुधारकों की संख्या इतनी थोड़ी है कि वे उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। और, मैं यह भी जानता हूँ कि इन सब सुधारों का भार उन्हीं थोड़े-से सच्चे सुधारकों के सिर पड़ता है। इसलिये इतने समय की पुरानी कुप्रथा के सम्मुख सुधारक क्या करें? यही प्रश्न हल करना है। *संसार के सभी सुधारकों ने निम्न उपायों में से एक या दो* उपाय ग्रहण किए हैं। उनकी बहुत बड़ी संख्या सुधारों के लिये तीव्र आंदोलन करती और हिंसा की शरण लेती थी। वे ऐसा आंदोलन करते थे, जिससे सरकार और जनता तंग आ जाती तथा जनता के—नागरिकों के—शांत जीवन में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती थी। दूसरे प्रकार का सुधारक, जिसे मैं अहिंसात्मक श्रेणी का कहता हूँ, अधिक उदार रूप से आंदोलन करता है। वह मनसा वाचा कर्मणा हिंसात्मक कार्य द्वारा नहीं, अपितु आत्मपीड़ा द्वारा अपनी ओर ध्यान आकर्षित करता है। वह बाल बराबर भी सत्य से नहीं डिगता, और बुराई दूर करने के लिये अधीर होते हुए भी बुराई करनेवाले के प्रति भी बुरा

भाव नहीं लाता। इसी के लिये मैंने एक छोटा-सा नाम रक्खा है, और दक्षिण-आफ्रिका के समान भारत के सामने भी मैं इसे 'सत्याग्रह' कहकर उपस्थित करता हूँ। कृपया सत्याग्रह और सिविल-नाफ़र्मानी को मिलाइए नहीं। दूसरी चीज़ सत्याग्रह की ही एक शाखा है, इसमें कोई संदेह नहीं, पर वह प्रारंभ मे नहीं, एकदम अंत में आती है। उसके आरंभ के पूर्व ही अत्यधिक संयम का होना आवश्यक है। उसके लिये आत्मनियंत्रण अनिवार्य है। सत्याग्रह दानशीलता पर निर्भर करता है। सत्याग्रही अपने शत्रुओ के कार्यों और भावो का भी मन-माना या अनुचित अर्थ नहीं लगाता, क्योंकि वह दबाकर नहीं, मत-परिवर्तन कराकर उसे अपनी ओर मिलाना चाहता है। इस-लिये आप इस बात की कल्पना कर सकते हैं कि जब विरुधनगर में मेरे एक मित्र ने मुझसे भेट कर मेरे समूचे सिद्धांतों का गलत अर्थ लगाया, तो मुझे कितना दुःखद आश्चर्य हुआ। उसने 'ट्रिनेंड्रम एक्सप्रेस' मे मेरे साथ अपनी बातचीत की रिपोर्ट छपवाई थी, जिसे मैंने देखा है। मेरी उसके साथ जो बातचीत हुई थी, उसका शुरू से आखीर तक गलत और उलटा रूप दिया गया है (एक आवाज़—धिक्कार! धिक्कार!)। पर आपको 'धिक्कार' कहने का अधिकार नहीं है। जिन सज्जन ने 'धिक्कार' कहा है, वह दानशीलता या उदारता का गुण या अर्थ ही नहीं जानते, क्योंकि एक क्षण के लिये भी मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि जो सज्जन मुझसे मिले थे, उन्होंने जान-बूझकर अर्थ का

अनर्थ किया है। आज प्रातःकाल उन्होंने मुझे जो सफ़ाई दी, मैं उसका विश्वास करने के लिये तैयार हूँ। किंतु मैंने आपका इसकी ओर इतना ध्यान इसीलिये आकर्षित किया है कि मैं आपको सत्याग्रह का अर्थ समझा सकूँ, और साथ ही जो लोग इस अस्त्र को चलाना नहीं जानते, उनके ऐसा करने में जो खतरे हैं, वे भी दिखला दूँ। मैं यह उदाहरण इसीलिये दे रहा हूँ कि भावी सुधारक को ऐसा पथ अपनाने का खतरा समझा दूँ, और सचेत कर दूँ कि जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि जिस पथ पर वह खड़ा है, वह मजबूत है या नहीं, जब तक उसे साधारण से अधिक आत्मनियंत्रण प्राप्त नहीं हो गया है, मेरे लिये सत्याग्रह बड़ा प्रिय और अमोघ अस्त्र होते हुए भी मैं यह नहीं चाहता कि अपने भरसक इसका दुरुपयोग या अनुचित उपयोग होने दूँ। इसीलिये मैंने इस मित्र को सलाह दी कि वह इस प्रश्न को तब तक न अपनावे, जब तक वह सत्याग्रह का पूरा मर्म समझकर उसका तथ्य न ग्रहण कर सके।

पर ऐसा कहकर मैं एक भी सुधारक का उत्साह ठंडा नहीं करना चाहता। इस समस्या का मैं इतने विस्तार के साथ इसलिये पर्यालोचन कर रहा हूँ कि मैं शीघ्रतम रूप से इसको हल करने के लिये, इससे काम लेना चाहता हूँ। इसलिये मैं विन-म्रता-पूर्वक यह सलाह देता हूँ कि आपमें से जिसको भी सार्व-जनिक जीवन का कुछ अनुभव है, इस आंदोलन को अपने

हाथ में लेकर, अपना बनाकर उन युवकों की दृढता तथा क्रिया-शक्ति का सारथ्य करे, जो इसमें रुचि रखते हैं, पर कार्य करना नहीं जानते। और, मै आपको यह भी सलाह देता हूँ कि आप अधिकारियों के संपर्क में भी आवें, और जब तक यह सुधार चालू न हो जाय, उनको चैन न लेने दें। क्योंकि मै स्वतंत्रता-पूर्वक आपसे यह कह सकता हूँ कि केवल महारानी ही नहीं, पर दीवान साहब भी इस सुधार के पक्षपाती है। पर चूँकि वह दूसरे धर्म के हैं, हम और आप हिंदू यह जानते हैं कि वह किस सीमा तक जा सकते हैं। मेरी सम्मति में, जहाँ तक सरकार का सबंध है, वह सुधार के पक्ष में है, पर उसका श्रीगणेश आपकी ओर से होगा, उसका प्रोत्साहन आप करेंगे, न कि सरकार। आप मुझे इस बात के लिये क्षमा करेंगे कि मैने बडे विषय तथा तार्किक रूप में इस समस्या पर विचार किया है। मैं और करता ही क्या, क्योंकि मेरे पास इतना समय नहीं था कि मै नेताओं को बुलाकर, उनके साथ इसके हरएक पहलू पर विचार करता। इसलिये मै समझता हूँ कि अछूत- प्रथा के विरोध मे इतनी बडी सभा के सम्मुख आप मेरे व्याख्यान की विषमता का ध्यान न करेंगे।

वर्णाश्रम-धर्म और अछूत-प्रथा

[हरिजन-उद्धार वर्णाश्रम-धर्म के प्रतिकूल नहीं है। यह विचार भ्रम-पूर्ण है। गांधीजी भी वर्णाश्रम के कट्टर समर्थक हैं। दोनों का क्या संबंध है, यह जानने के लिये गांधीजी के ट्रिवेंड्रम के ही व्याख्यान का यह अंश पढ़ लेना आवश्यक है।—संपादक]

अछूत-प्रथा पर व्याख्यान देने के सिलसिले में आज एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ है, और मुझसे पूछा गया है कि अछूत-प्रथा का वर्णाश्रम-धर्म से क्या संबंध है। इसका अर्थ यह है कि मैं वर्णाश्रम-धर्म पर अपना विचार प्रकट करूँ। जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिंदू-धर्म में सबसे सरल बात है 'वर्णाश्रम-धर्म' का अर्थ। 'वर्ण' का अर्थ अत्यंत सरल है। इसका केवल यही अर्थ है कि कर्तव्य के मूल-सिद्धांतों का विचार रखते हुए, जीविका-निर्वाह का कार्य वही होना चाहिए, जो कुल-परंपरा से हमारे पूर्वज करते आ रहे हैं। यदि हम सभी धर्मों में मनुष्य की जो परिभाषा की गई है, उसे मानने के लिये तैयार हैं, तो मैं इस बात को अपनी सत्ता-मात्र का मूल-नियम समझता हूँ। ईश्वर के बनाए सभी जानवरों में मनुष्य ही ऐसा पशु है, जिसकी सृष्टि इसलिये की गई है कि वह अपने विधाता को पहचाने।

इसलिये मनुष्य का यह ध्येय नहीं है कि वह सदैव अपनी भौतिक श्री-वृद्धि करता जाय, किंतु उसका मुख्य और प्रधान कार्य है अपने विधाता या सृजनहार के निकट पहुँचने की चेष्टा करते रहना, और इसी परिभाषा के आधार पर हमारे प्राचीन ऋषियो ने हमारी सत्ता का यह नियम ढूँढ निकाला। आप समझ सकेंगे कि यदि हम सब इस 'वर्ण-विधान' का अनुकरण करें, तो हमारी भौतिक महत्त्वाकांक्षा सीमित हो सकेगी। हमारी क्रिया-शक्ति को समय मिलेगा कि वह ईश्वर को जानने के लिये जिस विशाल तथा महत्पथ से चलना होता है, उसमें अपना उपयोग करेगा। इसलिये आप यह भी देख लेंगे कि ससार के जिन अधिकतम कार्यों की ओर हमारा ध्यान रहता है, वह निरर्थक प्रतीत होगा। इन बातो को सुनकर आप यह कह सकते है कि आज जिस 'वर्ण' का हम पालन करते हैं, वह मेरे वर्णित 'वर्ण' के बिलकुल ही विपरीत है। यह बात सत्य है, पर जिस प्रकार असत्य को सत्य के रूप में माने जाते देखकर भी आप सत्य से घृणा नहा करते, किंतु असत्य को सत्य से दूर कर सत्य को ही अपनाने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार 'वर्ण' के नाम पर प्रचलित अनुचित वस्तु को भी हम दूर कर सकते हैं, और हिंदू-समाज की वर्तमान कुदशा को परिष्कृत कर शुद्ध कर सकते है।

आश्रम तो वर्ण का परिणाम है। और, यदि 'वर्ण' ही खराब हो गया है, तो आश्रम का एकदम लोप हो जाना आश्चर्य-जनक

नहीं है। मनुष्य के जीवन की चार श्रेणियों को आश्रम कहते हैं। यहाँ पर एकत्रित कॉलेज के विज्ञान तथा कला-विभाग के विद्यार्थियों ने मुझे थैलियाँ भेंट की हैं। यदि वे मुझे यह आश्वासन दिला सकें कि वे प्रथम आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पूर्णतः पालन करते हैं, और मनसा वाचा कर्मणा वे ब्रह्मचारी हैं, तो मुझे आंतरिक हर्ष होगा। ब्रह्मचर्याश्रम का निर्देश है कि कम-से-कम २५ वर्ष की उम्र तक जो ब्रह्मचारी रहता है, उसे ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार है, और, चूँकि हिंदू-धर्म का संपूर्ण भाव ही यह है कि मनुष्य की वर्तमान दशा में सुधार करता हुआ उसे ईश्वर के निकट लेता जाय, इसीलिये ऋषियों ने गृहस्थाश्रम की भी एक सीमा बतला दी, और हमें वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों को भी क्रमशः अपनाने का निर्देश किया। पर आज भारत के हर कोने को छान डालिए, इनमें से किसी भी आश्रम का सच्चा पालन करने-वाला एक भी न मिलेगा। आज की सभ्यता तथा नवीन बुद्धि-मत्ता के युग में हम जीवन की इस योजना पर हँस सकते हैं। पर इसमें मुझे कोई संदेह नहीं कि हिंदू-धर्म की महान् सफलता का यही रहस्य भी है। हिंदू-सभ्यता अभी जीवित है, और मिस्री, असीरियन या बैबीलोनियन सभ्यता कभी की मर चुकीं। ईसाई-सभ्यता तो केवल दो हजार वर्ष पुरानी है। इसलाम तो अभी कल की चीज है। ये दोनो ही महान् सभ्यताएँ हैं, पर मेरी तुच्छ राय में, अभी इनका निर्माण हो रहा है। ईसाई-योरप में

बिलकुल ही ईसाइयत नहीं है, वह और मेरी समझ मे इस्लाम भी अपनी महान् गूढ़ता की खोज में अँधेरे में मार्ग टटोल रहा है। और, आज इन दो महान् धर्मों में स्वास्थ्यकर तथा अत्यंत अस्वास्थ्यकर दोनो प्रकार की प्रतिस्पर्द्धाएँ हो रही है। ज्यों-ज्यों मैं बूढा होता जाता हूँ, मेरी यह धारणा दृढ़ होती जाती है कि मानवी जीवन के लिये 'वर्ण' का होना आवश्यक है, और इसीलिये मैं ईसाई और मुसलमान तथा हिंदू की रक्षा के लिये समान रूप से आवश्यक समझता हूँ। इसलिये मैं यह मानना अस्वीकार करता हूँ कि 'वर्णाश्रम' हिंदू-धर्म का अभिशाप है। आज दक्षिण में ऐसा कहना कुछ हिंदुओं के लिये फैशन की बात हो गई है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम आप आज-कल के वर्णाश्रम के भयंकर रूप को सहन करें या उसके वर्तमान स्वरूप के प्रति उदार भाव रक्खें। 'वर्णाश्रम' या जाति-पाँति का कोई संबंध नहीं। यदि आप चाहें, तो यह मान सकते हैं कि हिंदू-प्रगति में इस वस्तु ने बड़ी बाधा पहुँचाई है। और, अछूत-प्रथा इसी वर्णाश्रम का मैल है। जिस प्रकार धान या गेहूँ के खेत मे घास-पात को नहीं उगने दिया जाता, उखाड़ फेंका जाता है, उसी प्रकार इस मैल को भी हटा देना चाहिए। 'वर्ण' के इस भाव में किसी की बड़ाई-छुटाई का कोई स्थान ही नहीं है। यदि मैं हिंदू-भाव को ठीक प्रकार से व्यक्त कर सकता हूँ, तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि सभी व्यक्तियो का, सभी प्राणियों का जीवन समान है, कोई बड़ा या छोटा नहीं

है। इसलिये ब्राह्मण का यह कहना या सोचना कि वह अन्य वर्णवालों से बड़ा है, नितांत अनुचित है। प्राचीन समय के ब्राह्मण यह नहीं कहा करते थे। वे आदरणीय इसलिये नहीं थे कि वे बड़प्पन का दम भरते थे, पर इसलिये कि पुरस्कार की लेश-मात्र भी कामना किए बिना ही वे दूसरों की सेवा करने के अधिकार का दावा रखते थे। पर आजकल के पुरोहितों ने इन पूर्वजों की महत्ता तथा आदर को अपनाने का पाखंड-मात्र किया है। वे हिंदू-धर्म या ब्राह्मणत्व की रक्षा नहीं कर रहे हैं। ज्ञात या अज्ञात रूप से वे अपनी ही डाल काट रहे हैं, और जब वे आपसे यह कहते हैं कि शास्त्रों में अछूत-प्रथा का निर्देश है, मैं निस्संकोच यह कहने के लिये तैयार हूँ कि वे अपने कर्तव्य तथा धर्म की अवज्ञा कर रहे हैं और हिंदू-धर्म के मान की गलत व्याख्या कर रहे हैं। इसलिये आज इस समाज के श्रोता हिंदुओं पर ही यह निर्भर करता है कि वे अपने लिये अत्यावश्यक कर्तव्य पहचानकर इस दिशा में क्रियाशील हों, और इस शाप से अपना छुटकारा करें। आप एक प्राचीन हिंदू-राज्य की प्रजा हैं। आपको इस सुधार में अगुआ बनने का गर्व होना चाहिए। जहाँ तक मैं आपके चारो ओर के वातावरण से पढ़ सकता हूँ, मुझे यही दिखाई पड़ता है कि यदि आप सचाई तथा मिहनत से कार्य करना चाहें, तो वास्तव में यही अनुकूल अवसर है।

सवर्णों से अनुरोध

[गांधीजी एक क्षण के लिये भी अछूत-प्रथा को सहन नहीं कर सकते। यह भ्रम है कि इस विषय में वह 'क्रमागत विकास' की प्रतीक्षा करने को तैयार हैं। क्विलन मे उनके एक व्याख्यान से यह स्पष्ट प्रकट होता है।—संपादक]

जिस प्रकार जरा-सा संखिया समूचे दूध को विषैला बना देता है, उसी प्रकार अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म को विषैला कर रही है। दूध के गुण और संखिया के विषैलेपन को जानते हुए हम दूध के पास संखिया का एक कतरा भी नहीं आने देंगे। ठीक इसी प्रकार मै हिंदू-धर्म और अछूत-प्रथा का सबंध मानता हूँ, और एक क्षण के लिये भी इस प्रथा को जारी रखना घातक समझता हूँ। एक हिंदू होने के नाते मै इस विषय में धैर्यशीलता को, शनैः-शनैः प्रगति करने के भाव को, हानिकर समझता हूँ। इसीलिये मै निस्संकोच यह सलाह देता हूँ कि ट्रावंकोर की रियासत एक क्षण में इस कलक को मिटा दे। किसी दूषण को धैर्य-पूर्वक सहना उसके और अपने साथ खिलवाड़ करना है। पर यह मै जानता हूँ कि किसी हिंदू रियासत के लिये भी इस प्रकार का सुधार करना तब तक संभव नहीं, जब तक राज्य की हिंदू प्रजा स्वय इस विषय मे आगे न बढे। इसलिये

राज्य के प्रधान के स्थान पर ज्यादातर मैं इस सभा में उपस्थित प्रत्येक सवर्ण हिंदू से ही निजी तौर पर अनुरोध करना चाहता हूँ। अछूत कहलानेवाले भाइयों के प्रति हम आप बहुत समय से अपने कर्तव्य की अवहेलना करते आ रहे हैं। इस प्रकार हम लोग वास्तव में हिंदू-धर्म के झूठे प्रतिनिधि हैं। बिना लेश-मात्र संकोच के मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप इस कुप्रथा के किसी भी समर्थक की कोई बात सुनने से इनकार कर दें। इस युग में किसी एक व्यक्ति या समुदाय का कोई कार्य छिपा नहीं रह सकता। जब तक हम लोगों के हृदय में इस कुप्रथा का भाव वर्तमान रहेगा, हमारी परीक्षा का परिणाम हमारे प्रतिकूल सिद्ध होता रहेगा, और हमारी दुर्बलता प्रकट होती रहेगी। यह तो आपको स्मरण ही रखना चाहिए कि इस समय संसार के सभी धर्मों का रूप शीघ्रता-पूर्वक परिवर्तित हो रहा है। ऐसी दशा में अगर हम शुतुर्मुर्ग की तरह अपना चेहरा छिपाकर सामने आनेवाली मुसीबत को भुला देना चाहें, तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। होनी होकर रहेगी। इस विषय में मुझे किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान हलचल के युग में या तो अछूत-प्रथा ही नष्ट हो जायगी, या हिंदू-धर्म ही नष्ट हो जायगा।

किंतु मैं इतना जानता हूँ कि हिंदू-धर्म नहीं मर रहा है, न मरनेवाला है, न इसकी कोई संभावना है, क्योंकि अछूत-प्रथा एक मुर्दे के रूप में ही इस समय दिखाई पड़ रही

है। वास्तव में यह प्रथा अपनी अंतिम साँसें ले रही है, और मुर्दा हो जाने पर भी जी उठने की निरर्थक चेष्टा कर रही है।

वर्णाश्रम की दलील

[वर्णाश्रम-धर्म का पालन तथा अछूत-प्रथा का नाश—दोनो बातें एक साथ कैसे सम्भव हैं ? साथ ही वैज्ञानिकों का विचार है कि वर्णाश्रम-प्रथा अवैज्ञानिक है। ये गूढ़ शंकाएँ हैं, जिनका संतोष-जनक समाधान गांधीजी ही कर सकते हैं। —संपादक]

एक संवाददाता लिखते हैं—

हाल ही में मद्रास में आपने जो व्याख्यान दिया था, उसमें चतुर्वर्ण-विभाग में अपना विश्वास प्रकट किया था। किंतु क्या वर्ण-प्रथा का परंपरागत होना उचित है ? कुछ लोगों की राय में आप परंपरागत विभाग में, उत्तराधिकार और कौटुंबिक विभाग में विश्वास रखते हैं। कुछ कहते हैं कि बात इससे उलटी ही है। आपकी लेखनी से तो पहली बात ही ठीक जान पड़ती है। उदाहरणार्थ, आपके इस कथन का क्या अर्थ है कि "अछूतों को शूद्र समझना चाहिए, और उनको अब्राह्मणों के सभी अधिकार प्रदान करने चाहिए। ब्राह्मण-अब्राह्मण के इस स्वेच्छाचार-पूर्ण भेद से क्या लाभ ? क्या वे दोनो दो भिन्न जीव ही हैं। दो भिन्न जंतु हैं। यदि अछूत इसी जीवन में अब्राह्मण हो सकता है, तो ब्राह्मण भी क्यों नहीं हो सकता ? पुन. यदि अछूत इस जन्म में शूद्र हो सकता है, तो वैश्य क्षत्रिय और

क्षत्रिय ब्राह्मण क्यों नहीं हो सकता। जो लोग कर्म-विधान में अविश्वास करते हैं, उन्हे आप यह विधान मानने के लिये विवश क्यो करते है? क्या संसार में श्रीनारायण गुरु स्वामी से बढ़कर कोई पूर्ण ब्राह्मण होगा? मैं बनिया गांधी से बढ़कर कोई ब्राह्मण नहीं देखता। मैं ऐसे सैकड़ो अब्राह्मणों को जानता हूँ, जो अधिकांश 'जन्मना' ब्राह्मणो से अच्छे हैं।

"यदि आप जन्मना वर्ण के सिद्धांत के पक्के समर्थक न होते, तो द्विज-वर्ग मे वर्तमान समान धर्म, समान रीति, समान नियम होने पर भी, उनमें अंतर्विवाह की आज्ञा क्यों न देते? मेरी समझ में इसी कारण आप इतनी तत्परता-पूर्वक निरामिष ब्राह्मण-अब्राह्मण मे सहभोज का भी विरोध करते हैं।

"इसमें कोई संदेह नहीं कि 'परंपरा' जीवन का एक महान् नियम है, पर उसकी रहस्यमयी योजना के पालन के विषय में और भी महान् तथा रहस्यमय कारण है। एक तो जीव-विज्ञान के विकास के सिद्धांत में, उसकी भाषा में, 'विभिन्नता' पर निर्भर करता है। यह विभिन्नता ही विश्व का प्रधान सिद्धांत है, जिस पर उसकी संपूर्ण प्रगति निर्भर करती है। इसी वस्तु को, कोई अधिक उपयुक्त नाम न होने के कारण, आप 'उन्नति-प्रगति' कहते है। इसलिये इस विभिन्नता के नियम का पालन हरएक समाज के हित में आवश्यक है, अपालन हानिकर होगा। भारत में वर्ण-प्रचार का इतिहास इसका पर्याप्त प्रमाण है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस प्रथा को उपयुक्त करने में,

इस नियम के पालन में जो सबसे बड़ी भूल हो सकती है, वह अपने धर्म, अपनी विद्या, अपने आध्यात्मिक कार्यों के लिये एक परम्परागत पुरोहित तथा रक्षक-समुदाय का निर्माण है, जो सर्वत्र केवल इसी एक कार्य का जिम्मेदार और सर्वेसर्वा होगा।

"बा० भगवानदास-ऐसे ठोस सनातन। ब्राह्मण ने भी, जिन्होंने इस विषय पर गवेषणा-पूर्ण विचार किया है, भारत के समाज के पुनर्निर्माण पर अपनी यह सम्मति प्रकट की है कि जन्मना वर्ण का सिद्धान्त छोड़ देना चाहिए। पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आप-ऐसे आदमी इसका ठोस पालन करने की सलाह देते हैं। चूँकि बहुत-से आदमी इस विषय में आपकी सम्मति स्पष्ट रूप से नहीं जानते, इसलिये मैं आशा करता हूँ कि आप अपने सम्मानित पत्र में इस पत्र को तथा अपना उत्तर प्रकाशित कर देंगे।"

मेरी समझ में मैंने 'वर्णाश्रम' के विरुद्ध सवाददाता की सभी दलीलों का समय-समय पर उत्तर दे दिया है। किंतु निस्सदेह पाठक भूलते होते हैं, या जो बात जिनके विषय में लिखी जाती है, वही उसे पढ़कर रह जाते हैं। उदाहरणार्थ, मैंने वर्णाश्रम तथा अछूत-प्रथा के भेद को कई बार बतलाया है। पहली प्रथा को मैं बुद्धिमत्ता-पूर्ण वैज्ञानिक वस्तु समझता हूँ, तथा दूसरी को घोर अवगुण और पूर्व-प्रथा का मैल। सम्भव है, अज्ञान-वश मैं जो भेद देखता हूँ, वह न हो, या जिसे वैज्ञानिक समझता हूँ, वह केवल भ्रम और अंध-विश्वास हो। किंतु मैं वर्णाश्रम का विभाग

व्यवसाय के आधार पर निर्धारित मानता हूँ, और मेरी समझ में वह बड़ा उपयोगी विभाग है, पर आजकल जाति-संबंधी भाव मूल-भाव के बिलकुल ही विपरीत है। बड़ाई-छुटाई का तो मेरे सामने कोई सवाल ही नहीं उठता। यह केवल कर्तव्य का प्रश्न है। मैंने यह अवश्य कहा है कि वर्ण-विभाग जन्मना है, पर मैंने यह भी कहा है कि शूद्र के लिये भी यह संभव है कि वह वैश्य बन जाय। पर वैश्य का कर्तव्य-पालन करने के लिये उसे वैश्यत्व का पट्टा नहीं चाहिए। स्वामी नारायण गुरु संस्कृत के विख्यात पंडित हैं, पर उनको अपना पांडित्य प्रकट करने के लिये ब्राह्मण कहलाने से कोई लाभ नहीं होगा। जो इस जन्म में ब्राह्मण के कर्तव्यों का पालन करता है, वह बड़ी सर-लता-पूर्वक अगले जन्म में ब्राह्मण के घर पैदा होगा। पर इसी जन्म में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में परिवर्तन से बड़ी गड़बड़ पैदा होगी। बड़ी धोखा-धड़ी चल निकलेगी। इसका प्राकृतिक परिणाम यह होगा कि वर्ण का नामोनिशान ही मिट जायगा। पर इस वस्तु को मिटाने का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता। भले ही इससे भौतिक महत्त्वाकांक्षा में बाधा पड़ती हो। किंतु धार्मिक उद्देश्य से रची व्यवस्था के साथ भौतिक उद्देश्य का सम्मिश्रण मैं नहीं कर सकता। मैं इसके लिये क्षमा चाहता हूं।

मेरे संवाददाता का उदाहरण भी उचित नहीं। मैं पंचम को शूद्र इस वास्ते कहता हूँ कि मेरा विश्वास है कि भारत में कोई पंचम वर्ण था ही नहीं। पंचम का वही कार्य है, जो शूद्र

का है। अतः उसे पंचम कहने की आवश्यकता ही क्या है। मेरा तो विश्वास है कि अछूत-प्रथा तथा 'वर्णाश्रम' के संबंध में इतना भ्रम तथा वर्णाश्रम का विरोध और अछूतोद्धार का समर्थन—इन विपरीत बातों से अछूत-कुप्रथा के निवारण में बड़ी बाधा पहुँचती है।

यह तो स्पष्ट है कि वर्णाश्रम-विधान से 'जीव-भेद-विज्ञान' के विधान में कोई बाधा नहीं पड़ती। न तो इसकी कोई भी गुंजायश ही है। पर एक ढंग की चीज में कुछ वर्ष या पीढ़ियों में भेद नहीं पैदा हो जाता। ब्राह्मण या अछूत में कोई मूल-भेद नहीं है। पर जो चाहे, वह खोजकर देख ले कि दोनो में या चतुर्वर्ण में एक विशेष भेद द्रष्टव्य है। मैं चाहता हूँ कि मेरे संवाददाता महोदय मेरे साथ मिलकर ब्राह्मण या किसी के भी बड़प्पन के विचार का विरोध करते, उससे लोहा लेते। वर्णाश्रम में जो अवगुण आ गए हैं, उनको दूर करना चाहिए, न कि वर्णाश्रम को ही।

वर्णाश्रम और अछूत-प्रथा

[पिछले उत्तर से भी लोगों की शंका का पूरा निवारण नहीं होता। कुछ शंकाएँ रह जाती हैं। पर यह लेख उनका पूरा समाधान कर देता है।—संपादक]

एक संवाददाता लिखते है—

"वर्णाश्रम-संबंधी मेरे पत्र के उत्तर में आपने जो आलोचना की है, उसके संबंध में मुझे यही लिखना है कि मैं वर्णाश्रम और अछूत-प्रथा में भेद को भले प्रकार समझता और मानता हूँ, और यह भी स्वीकार करता हूँ कि पिछली वस्तु की हिंदू-शास्त्र में कहीं भी आज्ञा नहीं है, किंतु जैसा आप स्वयं कहते हैं, 'कार्य-विभाग जन्मना होना चाहिए—' ऐसी दशा में हमारे समाज में अछूत-समुदाय सदा के लिये बना रहेगा। क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि जिनका यह कौटुंबिक तथा पुश्तैनी पेशा समझा जाता है, जो झाड़ू लगाएँ, मुर्दा ढोएँ, या कब्र खोदें, उनको हम बहुत गंदा समझकर हिकारत की नजर से देखें। हम उनको छूने से भी घृणा करें। अन्य किसी भी देश में ऐसा व्यक्ति इसलिये अछूत नहीं समझा जाता कि वहाँ इस प्रकार के कार्य पुश्तैनी नहीं समझे जाते, और समाज का कोई भी व्यक्ति योग्यता

प्राप्त कर सिपाही, अध्यापक, व्यापारी, वकील, पादरी या राजनीतिज्ञ हो सकता है। इसलिये, मेरी समझ में, इस कुप्रथा की जड़ इसीलिये जमी है कि हम लोग ऐसी कुप्रथाओं को पुश्तैनी समझते हैं। और, मुझे यह भी प्रतीत होता है कि जब तक हम लोग इस पुश्तैनी क़ानून को मानेंगे; हमारा इस कुप्रथा से कभी छुटकारा नहीं हो सकता। यह संभव है कि रामानुज ऐसे महान् सुधारकों के प्रभाव के कारण उसकी जड़ता में कुछ कमी आ जाय, पर इस दुर्गुण को एकदम दूर करना असंभव ही है। मेरी समझ में जाति-पाँति का बंधन बिना तोड़े अछूत-प्रथा का अंत करने की चेष्टा वैसे ही निरर्थक है, जैसे पेड़ का सिरा काटकर उसको निर्मूल करने का विचार।"

यह पत्र बहुत विचार-पूर्ण है, और यदि सुधारक सतर्क न रहेंगे, तो संवाददाता का भय कटु वास्तविकता में परिणत हो सकता है। पर इस तर्क में एक स्पष्ट विभ्रम भी है। क्या भंगी या मोची जन्मना या कार्य के कारण अछूत समझा जाता है? यदि जन्मना अछूत समझा जाता है, तो यह बड़ी भयंकर प्रथा है, और इसका अंत करना ही चाहिए। यदि कार्य-द्वारा व्यक्ति अछूत होता है, तो सफ़ाई के विचार से यह बड़ी महत्त्व की बात है। कोयले की खदान में काम करनेवाला आदमी जब तक काम करता है, अछूत बना रहता है, और आप उससे हाथ मिलाना भी चाहेंगे, तो वह यह कहकर अस्वीकार कर देगा कि

"मैं बहुत गंदा हो रहा हूँ।" पर काम समाप्त कर, स्नान कर, वस्त्र बदलकर वह सबके साथ, ऊँचे-से-ऊँचे लोगों के साथ मिलता है। इसीलिये ज्यों ही हम 'जन्मना' के भाव को अर्थात् बड़प्पन-छुटपन के भाव को दूर कर देते हैं, हम 'वर्णाश्रम' को शुद्ध कर उसे निर्मल बना देते हैं। ऐसी दशा में भंगी की संतान भी हेय नहीं समझी जायगी, और उसका ब्राह्मण के समान आदर होगा। अतएव दोष पुश्तैनी कानून का, बाप-दादों के कार्यों को अपनाने का नहीं, पर असमानता के अनुचित भाव का है।

मेरी समझ में वर्णाश्रम की रचना किसी संकुचित भाव से नहीं हुई थी। इसके विपरीत इसमें तो मजदूरी करनेवाले शूद्र को वही स्थान दिया गया, जो विद्वान् ब्राह्मण को। इसका ध्येय था गुण का विस्तार, दुर्गुण का नाश तथा मानवी सांसारिक महत्त्वाकांक्षा को स्थायी आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षा में परिणत करना। ब्राह्मण और शूद्र का—दोनो का ही लक्ष्य था संसार की झूठी माया-ममता से मुँह मोड़कर मोक्ष प्राप्त करना। समय पाकर यह प्रथा कुप्रथा केवल निम्न रीति-रिवाजो में, फँस गई, और इसका कार्य किसी को ऊँच, किसी को नीच बनाना रह गया। यह बात स्वीकार कर मैं इस वस्तु की दुर्बलता नहीं बतला रहा हूँ, पर यह तो मानव-स्वभाव की ही दुर्बलता है, जिसमें कभी उच्च 'स्व' प्रधान हो जाता है, कभी हेय 'स्व'। वर्तमान सुधारक का कार्य अछूतपन के शाप को दूर कर वर्णाश्रम को उसके पूर्व

में स्थापित करना है। इस सुधार के बाद परिष्कृत वर्णाश्रम अधिक दिन चलेगा या नहीं, यह परीक्षा की बात है। यह बात उस नए ब्राह्मण-वर्ग के हाथ में है, जिसकी नई रचना हो रही है, जो मनसा वाचा कर्मणा देश-सेवा तथा धर्म-सेवा में जुट रहा है। यदि वे निष्काम तथा दैवी भाव से प्रेरित होकर कार्य करेंगे, तो हिंदू-धर्म का कल्याण होगा, अन्यथा अकल्याण होगा, और अनुचित हाथों में पड़कर, संसार के अनेक धर्मों के समान, हिंदू-धर्म का भी नाश हो जायगा। किंतु मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिंदू-धर्म इतना शक्तिशाली है कि समय-समय पर उसमें जो अपवित्रताएँ समाविष्ट हो जाती हैं, उसे दूर कर दे। मेरी समझ में उसकी यह क्षमता अभी तक वर्तमान है।

बंगाल के अछूत

[अछूतों में भी अछूत होते हैं। यह एक विषम समस्या है कि इनका सुधार कैसे हो ! गांधीजी के पास इसकी अचूक औषध है।—संपादक]

एक बंगाली संवाददाता पूछते है—

१—"बंगाल में अछूत कुँए से पानी नहीं खींचने पाते, न तो वे उस कमरे में जाने पाते हैं, जिसमें पीने का पानी रक्खा रहता है। इस दुर्गुण को दूर करने का क्या उपाय है ? यदि हम उनके लिये अलग कुँए खुदवाएँ या अलग स्कूल खोलें, तो इस दुर्गुण को स्वीकार ही कर लेना होगा।

२—"बंगाल के अछूतों की मनोवृत्ति में एक विचित्रता यह है कि वे यह तो चाहते है कि ऊंचे वर्णवाले उनके हाथ का छुआ पानी पीएं, पर वे स्वयं अपने से नीचे वर्ण या समुदाय-वालो का छुआ पानी नहीं पीते। उनकी इस भूल का सुधार कैसे कराया जाय।

३—"बंगाल की हिंदू-महासभा तथा साधारण बंगाली हिंदू जनता लोगों से कहती फिरती है कि आप (गांधीजी) अछूतों के हाथ का छुआ पानी पीना उचित नहीं समझते।"

मेरा उत्तर है—

१—इस दुर्गुण को दूर करने का एक उपाय यह है कि हम उनके हाथ से पानी पीना शुरू करें। मेरी समझ में उनके लिये अलग कुआँ खोदने से यह बुराई स्थायी नहीं हो जायगी। अछूत-प्रथा के प्रभाव को मिटाने में काफी समय लगेगा। इस भय से कि दूसरे उनको अपने कुएँ पर चढ़ने न देंगे, उनके लिये अलग कुएँ बनाकर उनकी सहायता न करना अनुचित होगा। मेरा तो विश्वास है कि अगर हम अछूतो के लिये अच्छे कुएँ बनवाएँगे, तो बहुत-से लोग उनका प्रयोग करेंगे। अछूतों में तभी सुधार होगा, जब सवर्णों का उनके प्रति भाव बदलेगा, तथा सवर्ण उनके प्रति अपना कर्तव्य पहचान जायँगे।

२—जब 'उच्च वर्ण' कहलानेवाले हिंदू अछूतो को छूना शुरू कर देंगे, तो अछूतों में अछूत-प्रथा का भी स्वाभाविक अंत हो जायगा। हमारा कार्य अछूतो में सबसे नीची श्रेणी से प्रारंभ होना चाहिए।

३—मैं नहीं जानता कि बंगाल की हिंदू-महासभा मेरे विषय में क्या कहती है। मेरी स्थिति स्पष्ट है। मैं अछूतों को शूद्रों का अंग समझता हूँ। चूँकि हम शूद्रों के हाथ का छुआ पानी पीते हैं, अछूतों के हाथ का पानी पीने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए।

कठिन समस्या

[ब्राह्मण तथा अछूत की समस्या आंध्र तथा सुदूर दक्षिण में बड़ी विषम है। इसका शीघ्र निपटारा नहीं दिखाई पड़ता। लाचार होकर अब्राह्मण वर्ग उत्तेजित होता जा रहा है। पर गांधीजी ब्राह्मणत्व का प्रतिपादन, ब्राह्मण-समुदाय की रक्षा तथा ब्राह्मणों की महत्ता का संस्थापन भी चाहते हैं, और इसकी अच्छी विधि भी उनके पास है।—संपादक]

आंध्र से एक मित्र अपनी कठिनाइयों को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

"....बंगाल के एक महाशय के पत्र के उत्तर में आपने लिखा है कि चूँकि हम शूद्रों के हाथ का पानी पीते हैं, इसलिये हमें अछूतों के हाथ का पानी पीने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए। 'हम' से आपका तात्पर्य 'सवर्ण हिंदुओं' से है। किंतु क्या आपको यह मालूम है कि आंध्र तथा भारत के सुदूर दक्षिण भाग में ब्राह्मण अब्राह्मणों (तीन में से किसी भी जाति के लोगों) के हाथ का पानी ही नहीं पीते, प्रत्युत घोर सनातनी अब्राह्मणों को छूते तक नहीं।

"आपने प्रायः कहा है कि उच्च वर्णों का बड़प्पन का झूठा भाव मिटाने के लिये अंतर्भोज-सहभोज अनिवार्य नहीं है।

आपने इसी संबध में एक बार महामना मालवीयजी का उदाहरण देकर बतलाया था कि यद्यपि आप लोग एक दूसरे का पर्याप्त आदर करते है, फिर भी यदि मालवीयजी आपके हाथ का छुआ पानी तक नहीं पीते, तो इससे आपके प्रति कोई उपेक्षा नहीं प्रकट होती। उपेक्षा तो नहीं प्रकट होती, यह मैं स्वीकार कर सकता हूँ। किंतु क्या आपको यह मालूम है कि हमारी तरफ के ब्राह्मण का भोजन यदि सौ गज की दूरी से भी अ-ब्राह्मण देख ले, तो वह भोजन त्याग देगा। छूने की बात तो दूर रही। मैं आपको यह भी बतला दूँ कि यदि सड़क पर कोई अब्राह्मण या शूद्र किसी ब्राह्मण के भोजन के समय बोल दे, तो क्रुद्ध होकर वह भोजन छोड़ देगा। उस दिन वह भोजन ही नहीं करेगा। यदि इस दशा को घोर उपेक्षा न कहा जाय, तो इसका क्या अर्थ लगाया जा सकता है। क्या ब्राह्मणों ने अपने को अत्यधिक उच्च नहीं समझ लिया है? क्या आप कृपा कर इस विषय में अपना विचार प्रकट करेंगे। मैं स्वयं एक ब्राह्मण युवक हूँ, इसलिये मुझे इन बातों का निजी तौर पर ज्ञान है।"

अछूत-प्रथा शत-मुखवाला पिशाच है। यह एक घोर नैतिक तथा धार्मिक प्रश्न है। मेरे लिये अतर्भोज सामाजिक प्रश्न है। इस अछूत-प्रथा के भीतर अवश्य दूसरों के लिये एक घृणा-भाव छिपा हुआ है। समाज की जीवनी शक्ति में घुन की तरह लगकर यह सत्यानाश कर रही है। यह प्रथा मनुष्य के

अधिकार को ही अस्वीकार करती है। इसका तथा अंतर्भोज-सहभोज का कोई सबंध नहीं है। और, मै समाज-सुधारकों से आग्रह करूँगा कि वे इन दोनो चीजों को मिलाने की गड़बड़ न करें। यदि वे ऐसा करेंगे, तो 'अछूत तथा अस्पर्श्य लोगो' के उद्धार के पवित्र कार्य को धक्का पहुँचाएँगे। ब्राह्मण सवाददाता की कठिनाई वास्तविक है। इससे पता चलता है कि किस हद दर्जे तक यह बुराई पहुँच सकती है। प्राचीन युग के समान ब्राह्मण शब्द विनम्रता, शालीनता, पाडित्य, विद्या, त्याग, पवित्रता, साहस, क्षमाशीलता तथा सत्य-ज्ञान के लिये पर्यायवाची होना चाहिए था। पर आज यह पवित्र भूमि ब्राह्मण-अब्राह्मण के भेद से विनष्ट हो रही है। अनेक दशाओं में ब्राह्मण का वह बड़प्पन चला गया है, जो उसकी सेवा के कारण जन्म-सिद्ध अधिकार हो गया था, पर जिसका वह कभी दावा नहीं करता था। आज जिस वस्तु का उसे अधिकार नहीं रह गया है, उसी पर वह हताश होकर अपना स्वत्व प्रकट कर रहा है, और इसीलिये दक्षिण भारत के कुछ भागों में अब्राह्मण उससे ईर्ष्या करने लगे हैं। पर हिंदू-धर्म तथा देश के सौभाग्य से इस सवाददाता-ऐसे भी ब्राह्मण मौजूद हैं, जो दृढ़ता-पूर्वक इस अनुचित स्वत्व का निरादर कर रहे हैं, इसकी माँग का विरोध कर रहे हैं, और अपनी परपरागत महत्ता के अनुसार अब्राह्मणों की निस्स्वार्थ सेवा कर रहे हैं। हर जगह ब्राह्मण ही आगे बढ़कर अछूत-प्रथा का विरोध कर रहे हैं।

आध्र-सवाददाता ने जिस प्रकार के ब्राह्मणो का उल्लेख किया है, उनसे मैं आग्रह-पूर्वक अनुरोध करूंगा कि समय की गति पहचानें, और बड़प्पन के झूठे भाव त्याग दें, तथा अब्राह्मण को देखने-मात्र से जो पाप लगने का अध-विश्वास उन्हें हो गया है, या उसके वचन-मात्र से उन्हें भोजन खराब हो जाने का जो भ्रम हो जाता है, उसका त्याग कर दें। ब्राह्मणों ने ही ससार को यह उपदेश दिया था कि वे हरएक वस्तु को ब्रह्ममय देखें। ऐसी दशा में कोई बाहरी वस्तु उन्हे अपवित्र नहीं कर सकती। अपवित्रता तो भीतरी वस्तु है। ब्राह्मणों को चाहिए कि वे पुन यह सदेश दे कि हमारे मन के दुर्भाव ही वास्तविक अछूत तथा अदर्शनीय हैं। उन्हीं ने ससार को यह सिखलाया था—

"मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो.।"

आध्र-सवाददाता ने जो कुछ कहा है, उससे अब्राह्मणो को उत्तेजित नहीं हो जाना चाहिए। उसकी ओर से देशभक्त ब्राह्मण ही इस संवाददाता के समान लड़ाई लड लेंगे। आजकल अ-ब्राह्मणों में कुछ ब्राह्मणो के कुचाल के कारण ब्राह्मणों के प्रति जो दुर्भाव उत्पन्न हो गया है, वह अनुचित है। उनमें इतनी शालीनता होनी चाहिए कि जो लोग स्वय अपने प्रति दुराचरण कर रहे हैं, उनसे सदाचरण की आशा करें। यदि मेरी बगल से निकल जानेवाला अपने को अपवित्र समझता है, या यह समझता है कि वह मेरी वायु के स्पर्श से दूषित हो गया है, तो

मुझे अपमानित नहीं होना चाहिए। हमारे लिये इतना ही पर्याप्त है कि उसके कहने से रास्ता न छोड़ दें या इस डर से कि मेरी वाणी उसे दूषित कर देगी, बोलना न बंद कर दें। जिस प्रकार अपने प्रति उपेक्षा-भाव मुझे पसंद नहीं है, उसी प्रकार उसके प्रति भी उपेक्षा-भाव दिखलाना मेरे लिये अनुचित है। हाँ, उसके अंध-विश्वास तथा अज्ञान के प्रति हमारे हृदय में दया-भाव होना उचित है। यदि अब्राह्मण में लेश-मात्र भी असंयमशीलता रह जायगी, तो उसका उद्देश्य सफल न होगा—उसका काम पूरा न होगा। किसी भी दशा में उसे सीमा से आगे बढ़कर ब्राह्मण को परेशान नहीं करना चाहिए। हिंदू-धर्म तथा मनुष्यता का सबसे सुंदर फूल ब्राह्मण है। मैं ऐसी कोई बात नहीं होने देना चाहता, जिससे वह मुर्झा जाय। यह मैं जानता हूँ कि वह अपनी रक्षा कर सकता है। इसके पहले वह बहुत-से तूफ़ानों का सामना और अपनी रक्षा कर चुका है। अब्राह्मणों के सिर यह कलंक नहीं होना चाहिए कि उन्होंने फूल की सुगंधि तथा ज्योति छीनने की चेष्टा की। ब्राह्मणों का नाश कर अब्राह्मणों का उदय मुझे अभीष्ट नहीं है। मैं चाहता हूँ कि वे उस उच्च पद को प्राप्त करें, जिसे ब्राह्मण पहले प्राप्त कर चुके थे। ब्राह्मण जन्मना होते हैं, ब्राह्मणत्व नहीं। हममें से निम्न-से-निम्न भी इस गुण का प्रतिपादन कर सकता है।

उचित प्रश्न

[मद्रास से एक व्यक्ति ने गाधीजी के पास, हरिजनों के सवध में, उनकी समस्या के सवध में, वडे वुद्धिमत्ता-पूर्ण प्रश्न भेजे थे। गाधीजी का उत्तर भी वड़ा मार्मिक तथा पठनीय है। इस प्रश्नोत्तर से सपूर्ण प्रथा का—आदि से अत तक—समीक्षण हो जाता है। प्रश्न कोई नए नहीं ह। गाधीजी उनका वार-वार उत्तर दे चुके हे। पर पूछने का ढग नया—उत्तर का ढग भी नया है।—सपादक]

कुछ समय पूर्व अछूत-प्रथा के सवध में वगाल से प्राप्त एक विचार-पूर्ण पत्र मैंने प्रकाशित किया था। इस दिशा में लेखक अभी तक परिश्रम-पूर्वक अनुसंधान कर रहा है। इस समय मेरे पास मद्रास से एक प्रश्नावली भेजी गई है, जिससे लेखक की अनुसधान-वृत्ति का पता चलता है। यह वड़ा शुभ लक्षण है कि सनातनी हिंदू इस कंटकाकीर्ण प्रश्न पर गवेषणा कर रहे हैं। उनके हृदय में जिज्ञासा तो उत्पन्न हो गई है। प्रश्नकर्ता की उत्कठा में तो कोई सदेह हो ही नहीं सकता। किंतु ये प्रश्न उसी ढग के हैं, जैसा कि अपनी यात्रा के सिलसिले में मुझसे वार-वार पूछा गया है। इसलिये इस आशा से कि मेरे उत्तरों से प्रश्नकर्ता का पथ प्रशस्त हो जाय, और उसकी तथा उसके समान कार्यकर्ताओं और सत्य मार्ग के अवलवियों

की जिज्ञासा शांत हो जाय, मैं संवाददाना द्वारा उपस्थित समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करता हूँ—

(१) अछूत-प्रथा को मिटाने के लिये क्या व्यावहारिक कार्य करना चाहिए ?

अ—ऐसे सभी स्कूल, सार्वजनिक पाठशालाएँ, मंदिर, सड़क, कुएँ आदि का मार्ग अछूतों के लिये खोल देना, जहाँ अब्राह्मण का जाना निषिद्ध न हो, और जो किसी एक ख़ास समुदाय या जाति के लिये ही न निर्मित हों।

ब—सवर्ण हिंदुओं को चाहिए कि अछूतों की संतानों के लिये स्कूल खुलवाएँ, कुएँ खुदवाएँ, और उनकी हर प्रकार से आवश्यक निजी सेवा करें। उदाहरणार्थ मादक द्रव्य-निषेध तथा स्वास्थ्य-सुधार, सफ़ाई आदि का कार्य करना और उनकी औषधि आदि से सहायता करना।

(२) जिस समय अछूत-बाधा एकदम उठ जायगी, अछूतों का धार्मिक पद-महत्त्व क्या रहेगा ?

धार्मिक महत्त्व वही होगा, जो अन्य सवर्ण हिंदुओं का है। इसलिये उन्हें अतिशूद्र न कहकर शूद्र कहा जायगा।

(३) अछूत-प्रथा के मिट जाने पर अछूतों तथा उच्च वर्ण के सनातनी हिंदुओं का क्या संबंध रहेगा ?

जैसा अब्राह्मण हिंदुओं के साथ।

(४) क्या आप सभी जातियों का सम्मिश्रण चाहते हैं ?

मैं सभी जातियों को मिटाकर केवल चार भेद ही रहने दूँगा।

(५) अछूत अपनी उपासना के लिये स्वय मदिर क्यों नहीं बनाते? वर्तमान मदिरों में पैर अड़ाने से क्या लाभ?

उच्च वर्णवालों ने उनको इस योग्य नहीं छोड़ा है कि वे ऐसा कर सकें। यह सोचना कि वे हमारे मंदिरों में दस्तदाजी करेंगे, इस प्रश्न को गलत ढग से सोचना है। हम सवर्णों को मदिरों में उन्हें भी प्रवेशाधिकार देकर सबके लिये मदिरों का द्वार खोल देना चाहिए।

(६) क्या आप साम्प्रदायिक मताधिकार के समर्थक है? क्या आपके मत में शासन के सभी विभागों में अछूतों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए?

ऐसी बात नहीं है। किंतु यदि अछूतों के लिये जान-बूझकर मार्ग बद कर दिया जाता है, और प्रभावशाली समुदाय उन्हें प्रवेश नहीं देता, तो इस अनुचित कार्य से स्वराज्य का मार्ग ही बद हो जायगा। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व मैं नहीं पसद करता, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं यह चाहता हूँ कि मै किसी सम्प्रदाय-समुदाय को प्रतिनिधित्व से वचित रक्खूँ। इसके विपरीत मेरी समझ में प्रतिनिधित्व-प्राप्त वर्गों का यह कर्तव्य है कि वे अप्रतिनिधित्व प्राप्त समुदायों को उनके समुचित प्रतिनिधित्व का अवसर दें।

(७) क्या आप वर्णाश्रम-धर्म की परिपक्वता—क्षमता में विश्वास रखते हैं?

हाँ। किंतु आज वर्ण की छीछालेदर हो रही है। आश्रम का

पता नहीं है। धर्म का अर्थ गलत लगाया जा रहा है। हमें अपनी सपूर्ण प्रणाली को दुहराकर उसे धर्म-सबधी नवीनतम शोध की श्रेणी में लाना पड़ेगा।

(८) क्या आपको इस बात में विश्वास नहीं है कि भारत कर्म-भूमि है ? इस ससार में जिसका जिस दशा में जन्म होता है, वह उसके पूर्व जन्म के सस्कार तथा कर्म के अनुसार ही होता है ?

किंतु मैं इस बात में उस दृष्टि से विश्वास नहीं करता, जिस दृष्टि से सवाददाता पूछ रहा है। जो जैसा बोएगा, वैसा काटेगा। किंतु भारत प्रधानत. कर्म-भूमि है, भोग-भूमि नहीं।

(९) क्या अछूतों की शिक्षा तथा समाज-सुधार हो जाने के बाद तब अछूतोद्धार होना उचित नहीं है ? क्या ये बातें पहले नहीं जरूरी हैं ?

किंतु बिना छुआछूत मिटाए उनमें शिक्षा और सुधार हो ही नहीं सकता।

(१०) क्या यह उचित तथा स्वाभाविक नहीं है कि मांसाहारी निरामिष से तथा निरामिष मासाहारी से और अ-मदिरा-सेवी मदिरा-सेवी से दूर तथा पृथक् रहने की चेष्टा करे ?

यह कोई आवश्यक बात नहीं है। मदिरा-निषेध का समर्थक अपना यह कर्तव्य समझेगा कि मदिरा-सेवी के बीच में रहकर उसके दुर्गुण को दूर कराए। यही बात निरामिष के लिये भी कही जा सकती है।

(११) क्या यह सत्य नहीं है कि एक शुद्ध व्यक्ति (शुद्ध इस विचार से कि वह निरामिष-भोजी तथा मादक द्रव्य का सेवन करनेवाला नहीं है) किसी मदिरा-सेवी तथा मासाहारी का साथ करने से अशुद्ध (मासाहार तथा मदिरा-सेवन के कारण) हो जाता है?

जो आदमी अज्ञान-वश मास-मदिरा का सेवन करता है, वह अपवित्र नहीं कहा जा सकता, पर दुराचारी के साथ मेल-जोल से सदाचारी भी दुराचारी हो सकता है, यह मैं मान सकता हूँ। किंतु मेरे कार्य-क्रम में किसी को अछूतों के साथ 'मिलाने' या 'सहचार' कराने की वात नहीं है।

(१२) क्या यह सत्य नहीं है कि उपरिलिखित कारण से घोर सनातनी ब्राह्मण अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये केवल अछूतों से ही नहीं, किंतु अन्य जातियों से भी पृथक् रहकर, अपना एक अलग समुदाय वनाकर ही रहते हैं?

मेरी समझ में ऐसी आध्यात्मिकता का कोई महत्त्व नहीं है, जिसकी रक्षा के लिये उसे ताले में वंद कर रखना पड़े। इसके अलावा वह दिन चले गए, जव लोग स्थायी एकातवास द्वारा अपने गुणों की रक्षा किया करते थे।

(१३) यदि आप अछूत-प्रथा को मिटाने की सलाह देते हैं, तो क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि अच्छा या बुरा, जैसा भी हो, आप भारत के वर्णाश्रम-धर्म को ही अव्यवस्थित करना चाहते हैं?

एक सुधार का प्रतिपादन कर मैं किसी धर्म या व्यक्ति के कार्य में किस प्रकार हस्तक्षेप करता हूँ, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। हस्तक्षेप तो तब होता, जब मैं अछूतों को यह सलाह देता कि छूतों से जबरदस्ती स्पृश्यास्पृश्य का भाव उठवा दो।

(१४) घोर सनातनी ब्राह्मणों के प्रति क्या यह हिंसा नहीं है कि आप विना उन्हें इस वात का तथ्य समझाए, और उनके हृदय में विश्वास जमाए उनके धर्म में हस्तक्षेप करते हैं ?

हिंसा का दोषी तो मैं हो ही नहीं सकता, क्योंकि विना उनके हृदय में विश्वास जमाए मैं धर्म में हस्तक्षेप करना ही नहीं चाहता।

(१५) अछूतों की वात तो जाने दीजिए। पर क्या ब्राह्मण अपने ही समाज के पृथक् वर्गों के हाथ का भोजन न कर, शादी-ब्याह न कर 'अछूतपन' के दोषी नहीं हैं ? वे तो दूसरों को छूते भी नहीं ?

यदि ब्राह्मण दूसरी जातिवालों को नहीं छूते, तो वे अछूत-पन के पाप के भागी हैं।

(१६) ब्राह्मण राजनीति से अधिक धर्म की चिंता तथा परवा करता है। ऐसी दशा में यदि अहिंसात्मक असहयोग का मर्म पूरी तरह समझनेवाला अछूत सत्याग्रह करता है, तो क्या वह सत्याग्रह हत्याग्रह में नहीं परिणत हो सकता ?

यदि सवाददाता का तात्पर्य वाइकोम-सत्याग्रह से है, तो वहाँ

तो अछूतों ने अद्भुत आत्मसयम दिखलाया है। प्रश्न के दूसरे भाग से तो ब्राह्मणों की ओर से हिंसा की सभावना प्रतीत होती है। यदि वे हिंसा का प्रश्रय लें, तो मुझे दुःख होगा। मेरी सम्मति में, ऐसी दशा में, वे अपना धर्म-भाव नहीं, किंतु धर्म के प्रति अपनी उपेक्षा तथा अज्ञान ही व्यक्त करेंगे।

(१७) क्या आपका यह कहना है कि संसार में सभी बराबर हो जायँ, और जाति, धर्म, वर्ण तथा व्यवसाय के अनुसार कोई भेद न रह जाय?

मानवता के मौलिक अधिकारों को ध्यान में रखते हुए यही विधान उचित प्रतीत होता है। यह स्पष्ट देखने में आता है कि जाति-धर्म-वर्ण आदि का भेद रहने पर भी मनुष्यों में कुछ बातें समान रहती हैं—जैसे भूख, प्यास इत्यादि।

(१८) कर्म बंधन समाप्त कर ससार की माया-ममता से परे पहुँचनेवाली महान् आत्माओं ने जिस महान् दार्शनिक सत्य को अपनाया है, क्या वह साधारण गृहस्थ के लिये भी उपयुक्त होगा, जिसके लिये कर्म-बंधन को त्यागने तथा जन्म-मरण से छुटकारा प्राप्त करने के लिये ऋषि-मुनि एक निश्चित विधान बना गए हैं, तथा जिस पर चलने से ही उसका कल्याण हो सकता है?

जन्मना किसी व्यक्ति को अछूत नहीं समझना चाहिए। यह एक सीधी-सादी सच्ची बात है, जिसके भीतर कोई बहुत बड़ा दार्शनिक सत्य नहीं छिपा हुआ है। यह इतना सादा सत्य है

कि केवल घोर सनातनी हिंदुओं को छोड़कर ससार के हर कोने में इसका मान तथा पालन होता है। मैं तो इस बात में विश्वास ही नहीं रखता कि ऋषियों ने छुआछूत की ऐसी शिक्षा दी थी, जिस प्रकार हम उसका पालन करते है।

सहस्रमुखी राक्षस

[किंतु प्रश्नो की लडी समाप्त नहीं हुई। लोगों की कुछ धार्मिक, कुछ शास्त्रीय, कुछ वैज्ञानिक तथा कुछ आध्यात्मिक शकाएँ बनी ही रहीं। फलत गाधीजी पुन शंका-समाधान करते हैं।—सपादक]

दक्षिण में छुआछूत सबसे अधिक भयकर रूप में प्रचलित है। सहस्र मुखवाले राक्षस के समान यह प्रथा अपनी जहरीली जीभ से समाज को डस रही है। एक स्थान से एक सवाददाता लिखते हैं—

"सनातनियों को ऐसा भय हो रहा है कि छुआछूत-भेद-भाव को मिटाने के प्रचारक इस समस्या और उसकी विषमताओं को ऐसी सीमा तक ले जाने की चेष्टा करेंगे, जिससे धपला मचेगा, और अनावश्यक झगड़ा पैदा होगा। मैं आपसे नीचे कुछ प्रश्न कर रहा हूँ, जिससे यह मालूम हो जाय कि आप किस दर्जे तक इस सुधार-कार्य को ले जाना चाहते हैं, और आपकी दृष्टि में इस कार्य की क्या व्याख्या है।"

मै नहीं समझता कि इस प्रथा में सुधार कराने का प्रचारको ने अभी तक कोई ऐसा काम किया है, जिससे कोई ऐसा झगड़ा पैदा हो जाय। पर मैं इस प्रश्न का उत्तर दे देना चाहता हूँ।

ऐसे सज्जनों के मन में भी, जो इस आंदोलन का समर्थन करना चाहते हैं, पर युगों से जमे हुए अंध-विश्वासों के कारण इसमें योग नहीं दे सकते, ऐसी शंकाएँ उठ सकती हैं। इसलिये मैं इस प्रश्नावली का उत्तर देना ही उचित समझता हूँ।

संवाददाता का पहला प्रश्न है—

क्या आपकी सम्मति में वर्णाश्रम-धर्म के सिद्धांत भारतीय राष्ट्रीयता की रचना में असंयत हैं?

पहले तो वर्णाश्रम और आजकल की जाति-पाँति तथा छुआछूत का कोई संबंध नहीं है। दूसरे, जहाँ तक वर्णाश्रम का मेरा ज्ञान है, भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगति में उससे कोई असंयति नहीं होती। इसके विपरीत, यदि वर्णाश्रम की मेरी परिभाषा सत्य है, तो उससे वास्तविक राष्ट्रीय भावना का विकास ही होगा।

दूसरा प्रश्न है—

क्या आपकी सम्मति में स्पर्श तथा दर्शन का दोष वैदिक-काल से ही माना जाता है?

यद्यपि इस विषय में मुझे निजी तथा बिलकुल ठीक ज्ञान नहीं है, फिर भी मुझे वेदों की पवित्रता में पूरा विश्वास है। इसीलिये मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि वेदों में ऐसे किसी दोष की कोई आज्ञा नहीं है। किंतु इस विषय में मुझसे कहीं अधिक अधिकार-पूर्वक श्रीयुत चिंतामणि विनायक वैद्य और पंडित सातवलकेर बोल सकते हैं। फिर भी मैं यह कह देना चाहता हूँ कि वैदिक काल से ही कोई वस्तु क्यों न

चली आ रही हो, पर यदि वह नैतिकता की दृष्टि से कलुषित है, तो उसे यह सोचकर कि यह वैदिक मूल-भाव के ही नहीं, कर्तव्य-शास्त्र के मूल-भाव के विपरीत होने के ही कारण त्याज्य है।

अन्य चार प्रश्नों को सक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है—

क्या आपको यह नहीं मालूम है कि आकर्षण-शक्ति के विधान के ज्ञान पर ही 'कर्मकांड' का सिद्धात निर्भर करता है। इसीलिये स्पर्श तथा दर्शन-दोष, जन्मना अपवित्रता तथा मृत्युना अपवित्रता का दोष मन की शुद्धि के विचार से माना जाता है।

जहाँ तक इनका इस दृष्टि से सबध है, उनका कुछ सापेक्षिक मूल्य भी है। पर वेद, शास्त्र, पुराण ससार के अन्य सभी धर्मों के समान स्पष्ट रूप से यह घोषित करते हैं कि मन की शुद्धि आंतरिक विषय है। जितना मन का मन पर प्रभाव पडता है, उतना शरीर का शरीर पर नहीं। यदि केवल बाहरी शुद्धि की क्रियाएँ की जायँ, तो उससे आत्मा का हनन होता है। बाहरी शुद्धि की क्रियाओ का परिणाम यह होता है कि आदमी अपने को दूसरों से बड़ा समझने लगता है, दूसरों के साथ पशु का सा व्यवहार करता है, और इस प्रकार उसकी आत्मा का हनन होता है।

सातवाँ प्रश्न है—

क्या आपकी सम्मति में जो वस्तु, जो नियम जीवन्मुक्तों के लिये लागू होता है, वह साधारण पुरुषों के लिये भी हितकर हो सकता है?

मेरी समझ में, ससार में रहनेवाला, नर-देह-धारी चाहे कितनी भी उच्च आत्मा क्यों न हो, उसका कार्य तथा उसके लिये लोगों के प्रति व्यवहार-नियम ऐसा विशिष्ट होगा कि दूसरा यदि उसे अपनाएगा, तो वह घातक सिद्ध होगा। छुआ-छूत का भूत आत्मा के विकास के लिये हानिकर सिद्ध हो चुका है। यह नियम हिंदू-धर्म के श्रेष्ठतम तथा उदार सिद्धांतों के विपरीत है।

तब प्रश्न होता है—

क्या आप वर्ण-धर्म में विश्वास नहीं रखते ?

मैं इस विषय में अपना मत प्रकट कर चुका हूँ। मेरी सम्मति में वर्ण-धर्म में छुआछूत तथा बड़प्पन-छुटाई को कोई स्थान नहीं है।

फिर प्रश्न है—"छुआछूत का किस समय ध्यान नहीं रखना चाहिए, यह निम्न-लिखित श्लोक से प्रकट होता है—

कल्याणे तीर्थयात्रायां राष्ट्रकोपे च संभ्रमे,
देवोत्सवे च दारिद्र्ये स्पृष्टिदोषो न विद्यते।

(अच्छे अवसर पर, तीर्थ-यात्रा में, राजनीतिक आंदोलन में, भय के अवसर पर, देवतों के उत्सवों पर तथा दरिद्रता में स्पर्शा-स्पर्श का दोष नहीं रहता।)

इन विशेष अवसरों की आज्ञाओं से ही मेरा सिद्धात प्रतिपादित हो जाता है। क्या आप इस अधिकार-पूर्ण श्लोक का समुचित उपयोग कर सीमा का निर्धारण कर देंगे ?

जिस बुद्धिमान् ने इस श्लोक को बनाया है, उसने विशेष अवसरों की इतनी लंबी सूची दी है कि आदमी के जीवन में कभी ऐसा अवसर आ ही नहीं सकता, जब इनमें से कोई बात न हो! अछूत-प्रथा के समर्थकों से मैं पूछता हूँ कि कोई ऐसा अवसर बतलाएँ, जब व्यक्ति सुखी-दुखी, भयान्वित, हर्षोत्फुल तथा दारिद्रय इत्यादि में से किसी एक की दशा में न रहता हो। फिर भी संवाददाता को पता नहीं कि उन लोगों का विचार कितना शून्य तथा दरिद्रता-पूर्ण है, जो अछूत-प्रथा का समर्थन केवल इसीलिये करते हैं कि वह परंपरा से चली आ रही है। अभी तक मुझे तो अस्पर्श्य, अछूत, अदर्शनीय व्यक्ति की समझ में आने लायक कोई व्याख्या पढ़ने-देखने को नहीं मिली।

अंतिम प्रश्न है—

राजनीति को आध्यात्मिक रूप प्रदान करने की चेष्टा में आप किस सीमा तक इस प्रथा को मिटाना चाहते हैं?

इसकी तो कोई सीमा ही नहीं है। राजनीति के आध्यात्मिक-करण का प्रारंभ इसी से होता है कि आजकल अछूत-प्रथा जिस प्रकार वर्तमान है, उसका समूल उच्छेदन कर दिया जाय। जन्मना किसी को अछूत मानना बड़ी गर्हित बात है, तथा मानवी स्वभाव को धार्मिक वृत्ति के लिये एक कलुषित सिद्धांत है।

गंदा भोजन और गंदा विचार

[भारत में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो अछूतों के प्रति अपना कर्तव्य महसूस करते हुए भी प्राचीन रूढ़ियों के कारण आगे नहीं बढ़ सकते। कुछ ऐसे हैं, जो आगे बढ़ना चाहते हैं, पर अछूतों—हरिजनों—के मद्य-मांस त्याज्य भोजन-सेवन से उनको नहीं अपना सकते। इनको गांधीजी बड़ा मार्मिक उत्तर देते हैं। गांधीजी के इस तर्क का कोई उत्तर ही नहीं हो सकता कि "संसार में गंदा भोजन करनेवाला अछूत है कि गंदा विचार रखनेवाला ?"—संपादक]

सदियों से जो अंध-विश्वास तथा परंपरा मनुष्य के हृदय में अपना घर बना लेती है, वह बहुत देर में उसे छोड़ती है। ऐसे बहुत-से सनातनी हिंदू हैं, जो उदारचेता हैं, पर परंपरा तथा रूढ़ि ने उनके हृदय में जो स्थान बना लिया है, उसके कारण वे अछूतों के साथ दुर्व्यवहार में कोई दूषण नहीं देख पाते। एक संवाददाता लिखते हैं—

"मैं आपका एक विनम्र अनुयायी हूँ, यद्यपि मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं अग्रिम-श्रेणी के अनुयायियों में से हूँ। पर अछूत-प्रश्न पर मेरे विचार तथा भाव आपके समान उग्र नहीं हैं। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ, जो यह कहते हैं कि अछूत दबाए तथा गिराए जा रहे हैं। मैं इसे अपना कर्तव्य समझता हूँ कि आपको

नम्रता-पूर्वक सूचित करूँ कि अछूत पहले स्वाधीन तथा सुखी थे। पचमों का भूत तथा वर्तमान इतिहास देखकर मैं उनकी आत्मा की सराहना नहीं कर सकता। उसने उन्हें कहीं का न छोड़ा। शिक्षा कही जानेवाली वस्तु तथा सरकारी ओहदों के टुकड़ों की प्यास ने उन्हें और भी दुर्गति में डाल रक्खा है। जो भी व्यक्ति शारीरिक परिश्रम त्यागकर नौकरी-चाकरी या ओहदे पर आता है, वह और भी बुरी दशा को प्राप्त करता है। हम ब्राह्मणों का यही दु.खदायी अनुभव है। मुझे वह दिन याद है, जब पचमों को कुटुंब का एक अंग समझा जाता था। प्रतिमास उनके भोजन-छाजन का प्रबंध किया जाता था। पर अब वे दिन चले गए। अधिकांश अछूत या तो विदेश जाकर गुलामी कर रहे हैं, या फौज में १५) रुपए माहवार के शाही वेतन पर नौकरी कर रहे हैं। मुझे भय है कि यदि आप उनका ऐसा उद्धार करना चाहते हैं, तो वह सफल न हो सकेगा। निजी तौर पर मैं यह महसूस करता हूँ कि उनका सामाजिक सुधार करना चाहिए, पर ऐसा तो एक दिन में जादू से नहीं हो सकता। उनकी शिक्षा के लिये करोड़ों रुपया खर्च करना होगा। उनकी आर्थिक दुर्दशा सुधारने और सन्मार्ग पर लाने के लिये करोड़ों रुपया खर्च करना होगा। सदियों से जीव-हत्या तथा गो-मांस-भोजन, मदिरा-सेवन की लत को सुधारना होगा। इन्हीं तीन बातों ने प्रधानत. उन्हें समाज का एक बहिष्कृत अंग बना दिया। वे ग्राम के एक कोने में अलग रहने के लिये

छोड़ दिए गए। यदि ऐसा न होगा, और केवल दूसरे वर्गों से यह कहा जायगा कि वे हरिजनों को गले से लगावें, तो इससे समाज की मर्यादा भग होगी, और मैं नहीं समझता कि आप ऐसा करना चाहते है।"

मर्यादा तो भग होती है अछूत को न छूने में। मदिरा-सेवन, गो-मांस-भक्षण तथा त्याज्य भोजन के भक्षण से क्या होता है? वह निस्सदेह बुरा काम करता है, पर यह काम उतना बुरा नहीं है, जितना अधिक परिश्रम तथा गुप्त पाप करना। जैसे समाज किसी घोर पापी को अछूत नहीं समझता, इसी प्रकार वह भी अछूत नहीं समझा जा सकता। पापियों से घृणा नहीं करना चाहिए। उन पर दया करना चाहिए। उनकी सहायता करना चाहिए कि वे पाप से मुक्त हो जायँ। हमें अपनी अहिंसा का गर्व है, पर जब तक हिंदुओ में छुआछूत है, हम अपने को अहिंसक नहीं कह सकते। अछूतों में जिन दुर्गुणों की लेखक शिकायत करता है, उनकी जिम्मेदारी हमारे सिर है। हम उनके सुधार के लिये क्या कर रहे थे? अपने परिवार के किसी व्यक्ति के सुधार के लिये हम कितनी बड़ी सपत्ति लगा देते हैं! क्या अछूत हिंदू-परिवार के एक अंग—व्यक्ति—नहीं हैं। हिंदू-धर्म की तो शिक्षा है कि विश्व-मात्र को, मनुष्य-मात्र को अविभक्त कुटुब समझो, और संसार में हरएक परस्पर के दोष—पाप—का जिम्मेदार और भागी होता है। यदि हम इस महान् सिद्धांत को व्यापक रूप में न स्वीकार कर सकें,

तो कम-से-कम हिंदू होने के नाते अछूतो को तो अपना समझें।

और, गंदा भोजन करना या गंदा विचार धारण करना, दो में से कौन चीज बुरी है? रोज हमारे हृदय में असंख्य अछूत अथवा गंदे विचार उठा करते हैं। हमें अपनी रक्षा उन्हीं से करनी चाहिए, क्योंकि वे ही वास्तविक अछूत और त्याज्य वस्तुएँ हैं। हमने अपने अछूत भाइयों के साथ जो अन्याय किया है, उसका प्रायश्चित्त उनके प्रेम-पूर्ण आलिंगन से ही होगा। संवाददाता को अछूतों की सेवा करने के कर्तव्य के संबंध में कोई आशंका नहीं है। हम उनकी किस प्रकार सेवा कर सकते हैं, यदि उनके दर्शन-मात्र से ही हम गंदे हो जाते हैं।

अहम्मन्यता

[ब्राह्मण की अनुचित अहम्मन्यता का अब समय नहीं रहा। स्पर्श या वायु-दोष की कल्पना करना भी अनुचित प्रतीत होता है। ब्राह्मण चाहे जैसा भी हो, पवित्र है। हरिजन चाहे कितना ही पवित्र हो, अछूत ही होना चाहिए, यह कोरी आत्म-प्रवचना है। गाधीजी ने 'यंग इडिया' में इस महत्त्व-पूर्ण बात को साफ़ कर दिया है।—सपादक]

ट्रावकोर से एक महाशय लिखते हैं—

"ब्राह्मण और उनके रीति-रिवाजों, आचारों के सबध में कुछ ग़लतफ़हमी मालूम होती है। आप अहिंसा की प्रशसा करते हैं, पर केवल हम ब्राह्मण ही धार्मिक रूप से इस वस्तु का पालन करते हैं। जो व्यक्ति इसकी अवज्ञा करता है, उसे हम जाति-बाहर कर देते हैं। जीव-हत्या करनेवाले, या मांस खानेवाले के सपर्क को ही पाप-पूर्ण मानते हैं। कसाई, मछुए, ताड़ी निकालनेवाले के आगमन-मात्र से ही या मास खानेवाले, मदिरा सेवन करनेवाले अथवा अधार्मिक लोगों के स्पर्श-मात्र से ही भौतिक वायुमंडल दूषित हो जाता है। तपस् नष्ट होकर शुद्ध आकर्षण-शक्ति नष्ट हो जाती है।

"इसी को हम गदा होना समझते हैं। इन्हीं नियमों के पालन के कारण ब्राह्मण इतने युग से अपने परपरागत सदाचार को

निभाते आ रहे हैं। तब से उनका समय, उनका भाग्य बहुत बदल गया है, पर ब्राह्मण न बदले। यदि इन्हें बिना रोक-टोक के हरएक के साथ स्वतन्त्रता-पूर्वक मिलने दिया जाय, तो ब्राह्मण गई-गुज़री अत्यत गिरी जातियों से भी हीन दशा को प्राप्त होंगे, वे ख़राब-से-ख़राब पाप आसानी से करने लगेंगे, वे छिपे-छिपे सभी दुर्व्यसनों का सेवन कर सकेंगे, जिसे छुआछूत के कारण गुप्त रखना बहुत कठिन होता, और ऊपर से पवित्रता का आडबर बनाए रहेंगे। हमें मालूम है कि आजकल नाम-मात्र के बहुत-से ब्राह्मण ऐसे ही हैं, और वे दूसरों को भी अपनी गिरी दशा में मिलाने के लिये दीन-दुनिया एक कर रहे हैं।

"एक ऐसे देश में, जहाँ पर समुदायों की विभिन्नता आचार-विचार की विभिन्नता पर निर्भर करती है (पश्चिम की तरह रंग, धन या शक्ति की विभिन्नता पर नहीं), और भिन्न केंद्रों में व्यावसायिक, सामाजिक तथा पारिवारिक सुविधाओं के विचार से रहती है, जैसा कि हमारे देश में उनके बीच की स्पष्ट विभिन्नता से प्रतीत होता है, यदि कोई समुदाय या व्यक्ति अपने आचार-विचार बदल दे, तो वह बहुत समय तक छिपा नहीं रह सकता।

"इस दशा के विपरीत, यदि किसी को क़साई, मांसाहारी और मद्यप के बीच रहने दिया जाय, तो उसके लिये यह असभव होगा कि वहाँ पर अपने उन गुणों का पालन कर सके, जो उस समुदाय के लिये नए, अनोखे तथा अज्ञात हैं। यह तो स्वाभाविक बात है कि हरएक व्यक्ति अपनी रुचि तथा प्रकृति के

अनुकूल वातावरण में रहना चाहता है। इसीलिये यह आवश्यक है कि भौतिक, नैतिक और धार्मिक रूप से ब्राह्मणों के निवास-स्थल को कसाई, मछुए, ताडी निकालनेवाले आदि के प्रवेश से मुक्त रक्खा जाय।

"भारत में व्यवसाय और जाति-प्रथा का अविभक्त सम्बंध है। इसीलिये यह स्वाभाविक बात है कि जिस जाति का व्यक्ति होगा, उसी जाति के व्यवसाय का पालन करता होगा।

"इन्हीं कारणों से हमारे लिये अछूत का स्पर्श या उसे छूना, दोनो मना किया गया है। इससे हमारा समुदाय केवल दूषित होने से ही नहीं बचता, किंतु ऐसे पापकर्ता को समाज बाहर निकालने या धार्मिक दंड देने की व्यवस्था करता है, और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से उन लोगों को बुरे आचरण के परित्याग की सीख देता है, जो हमसे स्वतंत्रता-पूर्वक मिला चाहते हैं।

"इसलिये आप उनसे सार्वजनिक रूप से पाप के परित्याग तथा नित्य स्नान, ध्यान, व्रत, पाठ आदि के साथ चर्खा और बुनना को अपनाने की सलाह दें, और बतला दें कि यदि वे कुछ वर्षों में अपने को सबके सामने जाने लायक़ बनाना चाहते हैं, तो यही एकमात्र उपाय है। साथ ही, वे उन लोगों का संपर्क छोड दें, जो उन्हीं के समुदाय के होते हुए भी अपनी आदत नहीं बदलने को तैयार है। शास्त्रों ने भी उनके उद्धार की यही विधि बतलाई है। चूँकि मनुष्य के गुणावगुण की परख का कोई उपाय नहीं है, इसलिये किसी की मानसिक पवित्रता-अपवित्रता

की बात करना ही व्यर्थ है। सार्वजनिक आचार से ही किसी व्यक्ति का निजी गुण जान लेना चाहिए। इसलिये जो व्यक्ति हमारा-आपका अहिंसा-धर्म कम-से-कम इस सीमा तक अपनाने के लिये तैयार नहीं है कि जीव-वध, मछली या मांस खाना छोड़ दे, वह इस योग्य नहीं है कि परंपरा से उसके दर्शन-मात्र का निर्धारित दोष दूर कर दिया जाय।"

मैंने संवाददाता के प्रश्नों का कई बार उत्तर दिया है। फिर भी उसके तर्क की निस्सारता को जाहिर कर देना उचित है। पहले तो ब्राह्मणों का निरामिषता का दावा बिल्कुल ठीक नहीं है। यह बात केवल दक्षिण के ब्राह्मणों में ही लागू हो सकती है। पर अन्य स्थानों में—काश्मीर, बंगाल आदि प्रांतों में—मछली और मांस का आजादी से उपयोग होता है। इसके अलावा सभी मांसाहारी को देखना दोष नहीं माना जाता। पर पूर्ण पवित्र होने पर भी 'अस्पृश्य' परिवार में जन्म लेने के कारण ही अछूत को छूना, देखना, या उसका पास आना पाप समझा जाता है। क्या ब्राह्मण मांसाहारी, अविकारारूढ संस्कारी अब्राह्मणों से कंधा नहीं मिलाते? क्या वे मांस-भक्षी देशी नरेशों का अभिवादन नहीं करते?

संवाददाता-ऐसे संभ्रांत तथा संस्कृत व्यक्ति का एक तर्क-हीन तथा विनष्ट-प्राय प्रथा के समर्थन में यह अध-उत्साह देख-कर आश्चर्य होता है। संवाददाता स्वयं अपने तर्क की स्पष्ट

विषमताओं को भूल जाता है। सम्वाददाता मास-भक्षण के एक मच्छड़ के समान तर्क को इतना तूल देता है, पर एक खयाली पवित्रता की रक्षा के लिये जान-बूझकर करोड़ों भाइयों को दबाने की चेष्टा में जो तिगुनी हिंसा होती है, उसके ऊँट को सरलता-पूर्वक निगल जाता है। सम्वाददाता को मेरी सलाह है कि ऐसी निरामिषता से क्या लाभ, जिसकी रक्षा के लिये अपने भाइयों को जाति-बाहर करना पड़े। इस प्रकार से जिस चीज की रक्षा की जायगी, वह जरा से हवा के झोंके से उड़ जायगी। मैं स्वय निरामिषता को बहुत बड़ी चीज समझता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि अपनी अन्य सयमशीलता के साथ घोर निरामिषता के कारण ही ब्राह्मणों की इतनी आध्यात्मिक उन्नति हुई है। जिस समय वे अपनी उन्नति की चरम सीमा पर थे, उनको बाहरी सरक्षण की आवश्यकता नहीं होती थी। जो गुण बाहरी प्रभाव से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उसकी जीवनी-शक्ति नष्ट हो जाती है।

इसके अतिरिक्त अब वह समय नहीं रहा कि सम्वाददाता जिस प्रकार का सरक्षण चाहता है, वह ब्राह्मणों को प्राप्त हो सके। सौभाग्य से ऐसे ब्राह्मणों की सख्या नित्य बढ़ती जा रही है, जो अपने साथियों की नित्य की कटुता तथा विरोध की लेश-मात्र भी परवा न कर सुधार-आदोलन का नेतृत्व कर रहे हैं, और ऐसे सरक्षण से घृणा करते हैं। और, उन्हीं के हाथों सुधार की प्रगति की सबसे अधिक आशा है।

सवाददाता की इच्छा है कि मैं दलित जातियों को पवित्रता की शिक्षा दूँ। अवश्य वह 'यंग इंडिया' नहीं पढ़ते, अन्यथा उन्हें मालूम हो गया होता कि मैं उन्हें नित्य ऐसी सीख देता हूँ। मुझे उन्हें सूचित करते हर्ष होता है कि वे मेरी प्रार्थना के अनुसार बड़ी संतोष-जनक उन्नति कर रहे हैं। मैं सवाददाता को निमत्रण देता हूँ कि वे भी उन व्यक्तियों में शामिल हो जायँ, जो इन सदियों से पीडित स्त्री-पुरुषों में सच्चे मित्र के समान, न कि संरक्षकों के समान, सेवा कर रहे हैं।

जातियों का अपराध

[अदालतों में भी हरिजनो के साथ न्याय हो सकता है या नहीं? असहयोग का सिद्धात मानते हुए भी क्या सवर्णों को अदालत की शरण लेकर हरिजनों के स्वत्व का प्रतिपालन करना चाहिए। स्वराज्य के समय जब कि क़ानून और दड हमारे हाथ में होगा, उस समय हरिजन की क्या दशा होगी? उसके अधिकार बढ़ेंगे? यदि हाँ, तो अभी से क्यो नहीं वे अधिकार दे दिये जाते। यदि नहीं, तो ऐसे लोगों को स्वराज्य-कार्य मिल ही नहीं सकता। हम दक्षिण आफ्रिका में भारतीयो के साथ अन्याय के नाम पर रोते है। पर स्वय अपने देश में हरिजनो के साथ हम क्या कर रहे है?—सपादक]

दक्षिण आफ्रिका में रग तथा जाति-भेद के कारण हम दडित हो रहे हैं। भारत में हम हिंदू अपने सहधर्मियो को जाति-अपराध के कारण दड देते हैं। सबसे बड़ा अपराध पचमों ने किया है कि उसे छूआ नहीं जाता, देखा नहीं जाता, इत्यादि। हमारे इन दलित भाइयो की घोरतम दुर्दशा का पता मद्रास-प्रेसिडेंसी-कोर्ट के एक मुक़दमे से लगता है। साफ़-सुथरा कपड़ा पहने एक पचम दर्शन की अभिलाषा से तथा किसी को जरा भी दुःख पहुँचाने का जरा भी विचार न रखते हुए एक मदिर में जाता है। प्रतिवर्ष वह मदिर जाकर भगवान् को

प्रणाम कर आता था, किंतु मदिर के भीतर नहीं जाता था। पर गत वर्ष वह इतना प्रेम-विभोर हो रहा था कि मदिर के भीतर चला गया। जब उसे अपनी भूल याद आई, तो वह निषिद्ध स्थान में आ जाने के कारण डरकर मदिर से भागा, पर उसे पहचाननेवाले कुछ लोगों ने उसे पकड़ लिया, और पुलिस के हवाले किया। जब मदिर के अधिकारियों को इसका पता चला, तो उन्होंने मदिर की शुद्धि करा ली। तब मुकदमा चला। एक हिंदू मैजिस्ट्रेट ने अपराधी पर ७५) का जुर्माना या एक मास की कड़ी कैद का दड दिया। उसने मैजिस्ट्रेट के धर्म की बेइज्जती की थी। पर अपील की गई। अदालत में खूब तर्क-वितर्क हुआ। फैसला रोकना पड़ा। और, जब सजा रद्द कर दी गई, तो इस कारण नहीं कि बेचारे पचम को मदिर-प्रवेश का अधिकार था, प्रत्युत इसलिये कि छोटी अदालत बेइज्जती नहीं साबित कर सकी थी। यह न्याय स्वत्व, धर्म या नैतिकता की विजय नहीं है।

अपील की सफलता से पचम को यही तसल्ली प्राप्त हुई कि भूलकर मदिर-प्रवेश उसके लिये निषिद्ध नहीं है, वह यदि भक्ति के अतिरेक में मदिर के भीतर चला गया, तो उसे जेल नहीं जाना पड़ेगा। पर यदि वह या उसके साथी फिर कभी मदिर जाने की जुर्रत करेंगे, तो यह बहुत सभव है कि उनसे घृणा करनेवाले उन्हें मार न डालेंगे, तो कम-से-कम बहुत कठोर दड तो दिया ही जायगा।

यह एक विचित्र परिस्थिति है। दक्षिण आफ्रिका में अपने देश-भाइयों के साथ व्यवहार हमें पसद नहीं। हमें उसका दुःख है। हम स्वराज्य स्थापित करने के लिये उत्सुक हो रहे हैं। पर हम स्वय अपना अन्याय नहीं देखते कि अपने सहधर्मियो (पंचम अश) के साथ कितना बुरा व्यवहार कर रहे हैं। उनके साथ हम कुत्तों से भी बुरा व्यवहार करते हैं, क्योंकि कुत्ते भी अछूत नहीं होते। हममें से कुछ तो उन्हें सदैव अपने साथ रखते हैं।

हमारी स्वराज्य की योजना में अछूत का क्या स्थान होगा? यदि उस समय उन पर कोई बाधा-बधन या रुकावट न रह जायगी, तो हम आज से ही इसकी घोषणा क्यों नहीं कर देते? और, यदि आज हम शक्ति-हीन हैं, ऐसा नहीं कर सकते, तो क्या हम स्वराज्य के समय और भी शक्ति-हीन न हो जायँगे?

हम इन प्रश्नों की ओर से अपना कान बद कर दें, आँख मूँद दें, पर पचमों के लिये ये बहुत ही महत्त्व-पूर्ण हैं। यदि हम सभी इस सामाजिक तथा धार्मिक निरंकुशता को दूर करने के लिये नहीं उठ खड़े होते, तो फैसला हिंदू-धर्म के ही विरुद्ध होगा।

इस दिशा में बहुत कुछ किया गया है, पर जब तक मंदिर-प्रवेश के कारण पचमों पर फौजदारी का मुक़द्दमा चल सकता है, जब तक पंचमों को मदिर में प्रवेश और उपासना का अधिकार नहीं दिया जा सकता, तथा स्कूल, कुएँ और अन्य

सार्वजनिक स्थान खोल नहीं देते, तब तक हमारा पाप ज्यों-का-त्यों बना ही रहेगा। दक्षिण आफ्रिका में हम योरपियनों से जो अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं, हमें वे ही अधिकार पहले अपने देश में पंचमों को प्रदान करना चाहिए।

पर इस मामले से कुछ तसल्ली भी होती है। सज़ा रद्द कर दी गई। यदि बहुत-से सवर्ण हिंदुओ ने कथित अपराधी का पक्ष न लिया होता, तथा उसकी सहायता न की होती, तो अपील की सुनवाई का प्रबंध नहीं हो सकता था। सबसे रोचक बात तो यह थी कि श्रीयुत सी० राजगोपालाचारी अभियुक्त की ओर से पैरवी कर रहे थे, और मेरी समझ में असहयोग के सिद्धांत का उन्होंने सर्वथा उचित उपयोग किया। यदि उनके हस्तक्षेप से अभियुक्त छूट सकता था, और फिर भी अदालत में जाकर यदि वे चुपचाप बैठ रहते, और मन में अपनी असहयोग की पवित्रता पर हर्ष मनाते रहते, तो वह उसकी सज़ा के अपराधी होते। पंचम को असहयोग के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था। वह जुर्माने या क़ैद से बचने के लिये अपील कर रहा था। मैं चाहता हूँ, हरएक हिंदू 'अछूत' का मित्र बने, और धर्म के नाम पर उस पर अत्याचार करनेवाली रीतियों से सवर्ण करने या छुड़ाने में उसकी सहायता करे। उसे यह कार्य अपना कर्तव्य समझना चाहिए। 'अछूत' का मंदिर-प्रवेश नहीं, किंतु मंदिर-प्रवेश-निषेध मनुष्यता तथा धर्म का अपमान है।

मैं विजय के लिये रोता हूँ

[सत्य तथा अहिंसा गांधीजी के जीवन के दो मुख्य सिद्धांत हैं। पर जब वह हरिजनों के लिये प्राण देने लगते हैं, तब शंका होती है कि ऐसा क्यों करते हैं ? सत्य के लिये प्राण क्यों नहीं देते। पर सत्य तथा अहिंसा, खद्दर तथा 'अछूत' का कितना संबंध है, तथा हरिजन के लिये प्राण देना सत्य के लिये प्राण देना किस प्रकार कहा जायगा, यह इस व्याख्यान से स्पष्ट हो जायगा।—संपादक]

१९२५ में गांधीजी ने काठियावाड़ का दौरा किया था, और उसी सिलसिले में राजकोट गए थे। राजकोट में प्रतिनिधि-सभा ने उनको मान-पत्र भेंट किया था, और उसकी ओर से श्रीमान् ठाकुर साहब ने वह मान-पत्र गांधीजी के हाथ में दिया था। यह सोना का पानी चढ़ाये चाँदी के एक भारी पात्र में था, तथा उसमें गांधीजी की हिंदू मुसलिम ऐक्य, सत्य तथा अहिंसा के प्रति सेवाओं की प्रशंसा की गई थी। खद्दर-कार्य या हरिजन-सेवा का कोई ज़िक्र न था, यद्यपि गांधीजी ने इस दौरे में इन दोनो बातों पर काफ़ी ज़ोर दिया था।

मान-पत्र पढ़े जाने के पूर्व कुछ शास्त्रियों ने गांधीजी को आशीर्वाद-स्वरूप, इस अवसर के लिये रचे, संस्कृत-श्लोक पढ़े।

दरबार-गढ़ में आज पैर रखते ही मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आ गई। घटना यहीं की है, और तब से मुझे अभी तक याद है। उन दिनों यह रिवाज था कि राजा के यहाँ ब्याह पड़ने पर दूल्हनवाले राज्य में, ब्याह के पहले, एक डेपुटेशन भेजा जाता था। उस डेपुटेशन में मन्त्रियों के लड़के शामिल होते। मेरे पिता उस समय मन्त्री थे, पर वह कभी अपने लड़कों को नहीं भेजते थे। मैं जिस समय की घटना का वर्णन कर रहा हूँ, खानपुर और धर्मपुर ऐसा ही जत्था जानेवाला था। पर पिताजी ने हम लोगों को न जाने दिया। मेरी भली माता मे सांसारिकता अधिक थी, और वह यह नहीं चाहती थी कि इस पद के पुरस्कारों से हम वंचित रक्खे जायँ। अतएव उसने मेरे भाई तथा मुझसे यह जोर दिया कि हम लोग स्वर्गीय ठाकुर साहब के पास जाकर रोने लगें। जब वह हमसे पूछें कि मामला क्या है, तो हम कह दें कि हम धर्मपुर जाना चाहते है। हमने इस सलाह के अनुसार काम किया, और धर्मपुर नहीं, बल्कि खानपुर भेजे गए। आज भी मैं अपनी सफलता और विजय के लिये रोऊँगा। मै नाम, यश, संपत्ति या पद के लिये नहीं रो रहा हूँ। जिन शास्त्रियों ने मुझे आशीर्वाद दिया है, उन्होंने कहा है कि कीर्ति को उपयुक्त भर्ता न मिलने के कारण वह अभी तक अक्षत-योनि कुमारी ही है, और उनका आशीर्वाद है कि वह लज्जाशीला सुंदरी अंत में मेरा वरण करे। ईश्वर करे, वह सदैव कौमार्य का सुख भोगे। यदि उसने मुझे चुना, तो मैं तो

कहीं का न रहूँगा। इसीलिये मैं कीर्ति के लिये नहीं रो रहा हूँ, मैं उन दो-एक बातों के लिये रो रहा हूँ, जिन्हें आपने मुझे नहीं दिया है।

मेरे विषय में आपने जो उदार तथा कृपालु भाव प्रकट किए हैं, उसके प्रति मैं आप लोगों का बड़ा कृतज्ञ हूँ। ईश्वर करे, मैं उन शुभ कामनाओं के योग्य होऊँ। मैं यह विश्वास कर अपने को प्रसन्न नहीं करना चाहता कि आपने मेरे विषय में जो कुछ कहा है, मैं उसके योग्य हूँ। मैं उन लोगो में से हूँ, जो ऐसे रहना चाहते हैं। ईश्वर करे, मैं आपकी प्रशसा से, प्रतिष्ठा से अविचलित रहूँ।

इसलिये धन्यवाद देते हुए भी मैं आपसे दो-एक बात की शिकायत कर देना चाहता हूँ। जान-बूझकर या अनजान से आपने उन सब बातों का जिक्र ही अपने 'अभिनदन' में नहीं किया है। आपका यह कहना सत्य है कि सत्य तथा अहिंसा मेरे जीवन का प्रधान लक्ष्य (सिद्धात) है। इन दो जीवन-लक्ष्यो के बिना मैं निर्जीव शव के समान हो जाऊँगा। पर मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि आपने दो चीजों का एकदम जिक्र नहीं किया है, जिनका पालन, अनुकरण अहिंसा तथा सत्य के सिद्धात से अविभाजनीय है। मेरा मतलब खद्दर और अछूतोद्धार से है। एक प्रकार से ये दानो बातें हिंदू-मुसलिम ऐक्य से भी अधिक जरूरी हैं, क्योंकि बिना इनके हिंदू-मुसलिम ऐक्य हो ही नहीं सकता। जब तक कि हम हिंदू-धर्म को अछूत-प्रथा के

कलंक से मुक्त नहीं कर देते, तब तक वास्तविक हिंदू-मुसलिम ऐक्य प्राप्त करना असम्भव है।

एक अत्यंत विचारशील मुसलमान ने मुझसे कहा था कि जब तक अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म में वर्तमान है, मुसलमान उस धर्म या उसके अनुयायी का बहुत कम आदर कर सकते हैं। मैं अगणित बार कह चुका हूँ कि शास्त्रों में अछूत-समुदाय का कहीं उल्लेख-मात्र नहीं है। शास्त्रों में यह कहा नहीं लिखा है कि जुलाहे या भंगी अछूत हैं। मैं तो दोनो हूँ। बचपन के समय मेरा मल साफ करने के कारण मेरी माता तो सचमुच भंगिन थी, पर इसी कारण वह भंगिन नहीं बन गई। तब फिर, इसी प्रकार की सेवा करनेवाला भंगी अछूत क्यों कहा जाय? यदि संसार के सभी शास्त्री मेरे विरुद्ध हो जायँ, फिर भी मैं घर की छतों पर खड़े होकर यह चिल्लाकर कहने के लिये तैयार हूँ कि वे गलती कर रहे हैं—हिंदू-धर्म में अछूत-प्रथा को स्थान देकर भूल कर रहे हैं।

इस संबंध में मैं एक बात और कह देना चाहता हूँ, जिससे मुझे शोक और हर्ष दोनो हुआ। यह देखकर हर्ष होता है कि आज के कार्य-क्रम का पहला कार्य शास्त्रियों के आशीर्वाद से प्रारंभ होता है। पर मुझे आश्चर्य होता है कि कहीं इसमें कोई झुठाई तो नहीं थी। क्या उन्होंने इस संबंध में मेरी कार्रवाइयों के प्रति स्वीकृति प्रकट की, या उन्होंने केवल इस संबंध में ठाकुर साहब की सूचित या

अनुमानित इच्छा का पालन किया, और मुझे आशीर्वाद दे दिया।

अछूतोद्धार-संबंधी मेरे आंदोलन का जिक्र न कर आपके आशीर्वाद की ध्वनि ही असत्य प्रतीत हुई। ठाकुर साहब, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अछूतों के प्रति दयालु हों, अपने राज्य के दलित वर्गों से मित्रता करें। शबरी और गुह दोनो ही अनुमानतः, अछूत थे, पर राम ने उनको अपना सखा बनाया था। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि उनको स्कूल, मंदिर तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश का अधिकार दें।

बालचरों को विलायती खाकी पोशाक पहने देखकर मुझे घोर दुःख होता है। मुझे उम्मीद थी कि कम-से-कम ये लोग खद्दर पहने होंगे। यदि आपके बालचरों का पहनावा खद्दर का हो, और आपकी पुलिस खद्दर पहनती हो, तो दरिद्र, अछूत, निस्सहाय विधवा के दुःख को आप दूर कर सकते हैं। इसलिये ठाकुर साहब, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, और आपकी प्रतिनिधि-सभा से अनुरोध करता हूँ कि खद्दर पहनने का निश्चय करें, और राज्य के सभी कर्मचारियों के लिये खद्दर की पोशाक बनवावें। आपने मुझे एक क़ीमती भेंट दी है। मेरे पास न तो कोई तिजोरी है न ऐसा मज़बूत कमरा, जहाँ मैं इसको रख सकूँ। न मेरे पास आदमी हैं, जो ऐसा कमरा या तिजोरी होने पर उसकी चौकसी रक्खें। इसलिये मैं ऐसी सभी

कीमती चीजों को सेठ जमनालाल बजाज को दे देता हूँ कि सार्वजनिक उपयोग के लिये वह इनकी रक्षा करें। पर मेरे पास खद्दर इकट्ठा करने के लिये काफी स्थान और कमरा है, इसलिये मैं जिससे मिलता हूँ, खद्दर की भीख माँगता हूं। मैं लॉर्ड रीडिंग से भी यह अनुरोध करने में नहीं हिचकिचाता कि वह स्वयं खद्दर पहनें और अपने अर्दली को भी पहनावें।

ऐ सुयोग्य शासक, आपकी तलवार एक शक्तिशाली निशानी है। आपका मार्ग आपकी तलवार की धार की तरह है, आप सत्य के मार्ग से एक बाल बराबर भी नहीं डिग सकते। यह इस बात का सदैव स्मरण दिलाता रहता है कि आपके राज्य में एक भी शराबी या अपवित्र आदमी या औरत नहीं रहना चाहिए। यह आपका कर्तव्य है कि जहाँ दुर्बलता हो, वहाँ शक्ति प्रदान कराएँ, जहाँ गंदगी हो, वहाँ स्वच्छता का प्रवेश कराएँ। दलितों और दरिद्रों को अपना मित्र बनाइए। आपकी तलवार दूसरे की गर्दन के लिये नहीं, आपकी गर्दन के लिये है। आप अपनी प्रजा से कह सकते हैं कि ज्यों ही आप अपने अधिकार की सीमा के आगे बढ़े, वह तलवार के घाट आपको उतार सकती है। मैं इन शब्दों में इसलिये आपसे बात कर रहा हूँ कि आपके प्रति मैं अपना कुछ कर्तव्य समझता हूँ। ठाकुर साहब, आपके पिताजी ने मेरे पिताजी को बिना शर्त कुछ भूमि की बख्शीश दी थी।

इसलिये मैंने आपका कुछ नमक खाया था, और मैं अपनी नमकख़्वारी नहीं अदा करूँगा, यदि अवसर पर राजा के स्पष्ट कर्तव्यों की ओर आपका ध्यान नहीं आकर्षित करूँगा। आपने मेरा जो सम्मान किया है, उसके प्रति मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। मैं सबसे बड़ा सम्मान यह समझता हूँ कि दरिद्र, दलित तथा अछूत की सहायता की जाय। मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि आपने ग्राम और स्कूलों में चर्खा चलवा दिया है, अपने हर विभाग में खद्दर चला दिया है, आपकी हरएक सार्वजनिक संस्था में अछूतों को प्रवेशाधिकार है। यह सुनते ही मैं दुगनी इज्जत महसूस करूँगा, और आपका सादर अभिवादन करूँगा। ईश्वर आपको प्रजा-सेवा की शक्ति दे।

मंदिर-प्रवेश-सत्याग्रह

[मंदिर-प्रवेश का सत्याग्रह आजकल बड़ा महत्त्व-पूर्ण रूप धारण कर रहा है। महात्माजी के अनशन के समय हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सभी मिलकर इस आंदोलन में भाग लेने लगे थे। पर वास्तव में यह प्रश्न केवल हिंदुओं के लिये है, अन्यधर्मावलंबी केवल सहायता-मात्र दे सकते हैं।

कुछ लोग यह कहते हैं कि यह प्रश्न क़ानून द्वारा हल हो सकता है। पर गांधीजी इसका बड़ा सुंदर उत्तर देते हैं। नीचे जो लेख छापा जा रहा है वह उन्होंने पिछले वर्ष जेल जाने के पहले 'यंग इंडिया' के संपादक को बोल दिया था। उस समय हर मिनट पुलिस के आगमन और गिरफ़्तारी की प्रतीक्षा हो रही थी।—संपादक]

१—पिछले सप्ताह वर्किंग कमेटी की बैठकों के सिलसिले में ही मंदिर-प्रवेश सत्याग्रह के संबंध में कई प्रश्नों पर मैं केरल के तथा अन्य कांग्रेस कार्यकर्ताओं से परामर्श कर रहा था। उन परामर्शों के समय क्या बातचीत हुई, यह देना तो व्यर्थ होगा, पर मैं नीचे कुछ बातें लिख रहा हूँ, जिनको प्रश्नों का उत्तर समझना चाहिए। उत्तर इस प्रकार लिखे जाते हैं कि प्रश्नों को देने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। यद्यपि यह

सत्य है कि अछूतोद्धार का राजनीतिक महत्त्व है, पर इसका प्रधान महत्त्व धार्मिक है, और इसका सुलझाना हिंदुओं का काम है, अतएव उनके लिये इस प्रकार से यह कार्य राजनीति से भी अधिक महत्त्व-पूर्ण हो जाता है। अर्थात् छूतों का अछूतों के प्रति कर्तव्य किसी राजनीतिक विषमता के कारण भी कम नहीं हो सकता, अतएव वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति के कारण अछूतोद्धार के प्रश्न को टाल देना किसी प्रकार से भी संभव नहीं है।

२—किसी धार्मिक तथा सत्यनिष्ठ और न्याय-पूर्ण कार्य में सुधारक को हर प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ता है, और उसे अधिकारी समुदाय का अस्थायी वैर भी सहना पड़ता है। इसलिये जिनका यह विश्वास है कि अछूत-प्रथा एक अभि-शाप है, और उसको हर हालत में मिटा देना चाहिए, वे इस भय से कि उनके-ऐसों की संख्या नितांत कम है, अपना प्रयत्न लेश-मात्र भी कम नहीं करेंगे।

३—यदि वर्तमान पुजारी काम करना छोड़ दें, और अभी तक जिस खास वर्ग से पुजारी मिलते आए हैं, उनमें से कोई दूसरा पुजारी न मिले, तो मैं यह निस्संकोच कहने के लिये तैयार हूँ कि पुजारी के गुणों से संपन्न किसी भी दूसरी जाति का आदमी नियुक्त कर लेना चाहिए। जहाँ तक मुझे मालूम है, अधिकांश पुजारी अपनी जीविका के लिये इसी कार्य पर इतने आश्रित हैं कि वे काम नहीं छोड़ेंगे—हड़ताल नहीं

करेंगे। पूजा का अधिकार पैतृक है, इस बात में मुझे भी सदेह नहीं है। पर यदि कोई पुजारी स्वय यह अधिकार छोड़ देता है, तो इसमें दोष उसी का है।

४—यदि मदिर के अधिकारी मदिर का एक कोना अछूतो को दे दें, उनको वहाँ से दर्शन या पूजा का अधिकार दे दें, तो यह पर्याप्त नहीं समझना चाहिए। अन्य अब्राह्मणों के लिये जो बाधाएँ नहीं हैं, वह इन ब्राह्मणो के लिये नहीं होनी चाहिए। किंतु जो लोग अछूतों से नहीं मिलना चाहते, उनके लिये दूर पर एक कोना खाली कर देना चाहिए। इस प्रकार वे ही स्वय अछूत हो जाते हैं।

५—मदिरों के घेरे को तोड़ना ठीक नहीं। यह एक प्रकार का हिंसा-जनक कार्य होगा। यह सत्य है कि घेरे निर्जीव है, पर उनको बनानेवाले हाथ तो सजीव हैं।

ऊपर लिखी बातों से यह स्पष्ट है कि मदिर-प्रवेश-सत्याग्रह करनेवाले के लिये मदिरों में विश्वास करना आवश्यक है। मदिर-प्रवेश एक धार्मिक अधिकार है। इसलिये किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मदिर-प्रवेश-सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता। वैकम सत्याग्रह में जब जॉर्ज जोजेफ जेल गए, मैंने उनको सूचित किया था कि वह भूल कर गए। वह मुझसे सहमत हुए, तुरत क्षमा-याचना की, और छूट गए। मदिर-प्रवेश-सत्याग्रह छूत हिंदू का प्रायश्चित्त है। उसने पाप किया है, इसलिये इन अछूत सहधर्मियों को मदिर ले जाने की चेष्टा करते हुए

वह स्वय दड भोगने को तैयार है। अतएव अहिंदू केवल सत्याग्रह के अलावा और सहायता दे सकते हैं। उदाहरणार्थ यद्यपि अन्य समुदाय के लोग भी गुरुद्वारा-आदोलन के समय सिक्खों की सहायता कर रहे थे, पर अखड पाठ में विश्वास करनेवाले ही सिक्ख सत्याग्रह करने के अधिकारी थे, और सत्याग्रह कर रहे थे।

मेरी सम्मति में केवल अछूतों को ही सत्याग्रह नहीं करना चाहिए। इसका अगुआ छूत-सुधारक होना चाहिए। यह आवश्यकता की बात है। एक ऐसा समय भी आ सकता है, जब अछूत स्वय सत्याग्रह कर सकते हैं। यहाँ मैंने जो विचार प्रकट किए हैं, उनका भावार्थ यह है कि सत्याग्रह प्रारंभ करने के पहले छूत हिंदुओं में पर्याप्त जागृति तथा क्रियाशीलता का हो जाना आवश्यक है। यह शस्त्र की सफलता सार्वजनिक सम्मति पर निर्भर करती है। अतएव इसके उपयोग के पहले प्रायः सभी ज्ञात पुराने उपायों का प्रयोग करना होता है।

७—एकदम निजी सपत्तिवाले मदिरों में प्रवेश का अधिकार नहीं माँगा जा सकता। जब कोई अपने निजी मदिर को जनता के उपयोग के लिये दे देता है, पर अछूतों को आने की मनाही कर देता है, उसी समय वह मदिर निजी सपत्ति नहीं रह जाता।

८—कुछ की सलाह है कि सत्याग्रह द्वारा मदिर-प्रवेश रोक दिया जाय, और यह कार्य व्यवस्थापक क़ानूनों के हाथ छोड़

छोड़ दिया जाय। मैं इस सम्मति से बिलकुल ही असम्मत हूँ। यह तो नियम ही है कि व्यवस्थापक सभा के क़ानून, कम-से-कम प्रजातंत्र में तो अवश्य ही, सार्वजनिक मत के अनुसार ही बनते हैं, और सार्वजनिक सम्मति की रचना के लिये सत्याग्रह से बढ़कर शीघ्र उपाय मैं कोई जानता ही नहीं।

असली जड़

[यह लेख छोटा तथा बहुत पुराना है । अर्थात् १२ ऑक्टोबर, १९२१ का है । पर आज इससे एक बडे भारी प्रश्न का उत्तर मिलता है कि राजनीतिक लड़ाई ज़्यादा ज़रूरी है या अछूतोद्धार ।—सपादक]

एक सवाददाता का प्रश्न है—

"क्या आप यह नहीं समझते कि वर्तमान विदेशी सरकार की सफलता का कारण उच्च वर्णों द्वारा दरिद्र, दुर्बल तथा अछूत कहलानेवाले भाइयों का दमन है।"

इसमें कोई सदेह नहीं कि हमारे द्वारा अपने सगे-संबधियों का दमन ही मूल कारण है । यह आध्यात्मिकता से पतन है। धर्म के नाम पर हम अपनी जाति के छठे अश की अप्रतिष्ठा करते हैं, तथा उनके हितों का अपहरण कर रहे हैं, उसका सबसे न्याय-पूर्ण दड ईश्वर ने यह दिया है कि एक विदेशी सरकार हमारी अप्रतिष्ठा तथा अपहरण कर रही है। इसीलिये मैंने अछूतोद्धार को स्वराज्य-प्राप्ति के लिये अनिवार्य बतलाया है । चूँकि हमारे यहाँ स्वय दासत्व प्रथा है, हमने स्वय दास बना रक्खे हैं, इसलिये हमको दूसरों से अपनी दासता के लिये झगड़ा करने का अधिकार नहीं है, जब तक कि हम स्वय अपने दासों को विना शर्त मुक्त न कर दें, तथा उनके

अधिकार न दे दें। हमें पहले अपनी आँखो से अछूतपन का शहतीर निकाल देना चाहिए, तब हम अपने मालिकों की आँखों से दासता का 'तिल' निकालने की चेष्टा करें।

यदि मेरा पुनर्जन्म हो

[इस पुस्तक का यह २०वाँ तथा अंतिम लेख है। गांधीजी के विचारों का हर पहलू से अध्ययन हो सकेगा, पर अंत में हम उनके एक व्याख्यान का अंशानुवाद दे देना चाहते हैं। १९२१ की १३-१४ एप्रिल को अहमदाबाद में दलित-जाति-सम्मेलन हुआ। गांधीजी उस अवसर पर सभापति थे। उस समय का भाषण आज हम इसलिये दे रहे हैं कि इस समय वही सबसे सजीव व्याख्यान है। उसकी प्रत्येक पंक्ति में गांधीजी का मार्मिक उद्‌गार, दलितों के प्रति अपार स्नेह तथा हरिजनों के प्रति अगाध अनुराग भरा हुआ है। गांधीजी उस समय प्रधान बात कह देते हैं, जब वह कहते हैं कि यदि मैं पुनः जन्म लूँ, तो अछूत के घर।—संपादक]

मेरी समझ में नहीं आता कि सुधार का गलत अर्थ लगाने-वालों या उसके विरोधियों को किस प्रकार अपने मत का बना लूँ। मैं उनके सामने कैसे वकालत करूँ, जो किसी दलित व्यक्ति को छू लेना गंदा होना समझते हैं, और इस अपवित्रता को दूर करने के लिये आवश्यक शुद्धि-स्नान इत्यादि करते हैं, तथा ऐसा न करना पाप समझते हैं। मैं उनके सामने केवल अपना मंतव्य-मात्र ही प्रकट कर सकता हूँ।

मैं अछूत-प्रथा को हिंदू-समाज का सबसे बड़ा कलंक

समझता हूँ। अपने दक्षिण-आफ्रिका का घोर संग्राम में प्राप्त कटु अनुभवों से मेरे मन में यह विचार नहीं उठा है। कुछ लोगों का यह विचार भी गलत है कि ईसाई-धर्म तथा साहित्य के अध्ययन से मेरे मन में ऐसे भाव उठे हैं। ये विचार उस समय से पनपे हैं, जब मैं न तो बाइबिल को जानता था न उसके अनुयायियो को।

यह विचार उस समय मेरे मन में उत्पन्न हुआ, जब मैं शायद पूरे १२ वर्ष का भी नहीं था। ऊका-नामक भगी हमारे घर के पाखाने की सफाई करने आया करता था। मै प्रायः अपनी माता से पूछता या कि उसे छूने में क्या दोष है, पर मुझे उसे छूने की मनाही थी। यदि इत्तिफाकन् मैं ऊका को छू लेता, तो मुझे स्नान करना पड़ता, पर ऐसे अवसरों पर मुस्किराते हुए मैं कह देता कि धर्म में छुआछूत का कहीं जिक्र नहा है। यद्यपि मै बड़ा आज्ञाकारी बच्चा था, पर माता-पिता के प्रति पूर्ण सम्मान रखते हुए जहाँ तक सभव होता, मैं अपना विरोध प्रकट कर देता, और उनसे झगड़ बैठता था। मैंने अपनी मा से साफ कह दिया था कि उनका यह विचार बिलकुल भ्रम-पूर्ण है कि ऊका को छूना पाप है।

स्कूल में मैं प्राय अछूतों को छू देता या। और, चूँकि मैं इस सत्य को अपनी माता से कभी नहा छिपाता था, इसलिये मै उनसे साफ कह दिया करता था, और उन्होने मुझे बतलाया था कि अछूत को छूने के बाद जो पाप किया गया, उसको रद्द करने का सबसे सरल तरीका यह है कि राह चलते

किसी मुसलमान को छू दे। और, केवल अपनी माता के प्रति प्रेम और आदर-भाव के कारण मैं प्रायः ऐसा किया करता था। यद्यपि मैंने कभी इसे धार्मिक रूप से आवश्यक न समझा। कुछ समय बाद हम पोरबदर चले गए, और यहीं मेरा सस्कृत से पहला परिचय हुआ। अभी तक मैं किसी अँगरेजी स्कूल में भरती नहीं हुआ था। मुझे और मेरे भाई को पढ़ाने के लिये एक ब्राह्मण रक्खा गया। उस अध्यापक ने हमें रामरक्षा तथा विष्णु-नाम पढ़ाना शुरू किया। तब से मैं इन पक्तियों को कभी नहा भूल सका हूँ कि "जले विष्णुः स्थले विष्णुः।" निकट में ही एक बूढ़ी मा रहती थी। इन दिनो मैं बडा डरपोक था, और जरा भी रोशनी बुझने पर भूत-प्रेत की कल्पना करने लगता था। मेरा डर भगाने के लिये बूढ़ी मा ने कहा था कि जब कभी मुझे भय मालूम हो, मैं रामरक्षा के श्लोक का पाठ करना शुरू कर दूँ, इससे सभी भूत-प्रेत भाग जाते हैं। मैं ऐसा ही करने लगा, और इसका फल भी अच्छा हुआ। उस समय मैं कभी यह विश्वास ही नहीं कर सकता था कि रामरक्षा में कोई ऐसा श्लोक है, जिसके अनुसार अछूत का सपर्क पाप बतलाया गया है। पहले तो मैं उसका अर्थ ही अच्छी तरह नहीं समझता था—या समझता भो था, तो बहुत कच्चे तौर पर। पर मुझे यह विश्वास था कि जिस रामरक्षा के पाठ से भूत का भो भय भाग जाता है, वह अछूत से भय करना या उसका स्पर्श पाप-जनक नहीं बतलाना होगा।

हमारे परिवार में रामायण का नियमित रूप से पाठ होता था। लद्धा महाराज उसका पाठ करते थे। उन्हें कोढ़ हो गया था, और उनको विश्वास था कि यदि वह नियमित रूप से रामायण का पाठ करेंगे, तो कोढ़ अच्छा हो जायगा। मैंने अपने मन में सोचा, जिस रामायण में निषाद ने राम को गंगा पार कराया, वही रामायण यह कैसे सिखला सकती है कि अछूत को छूना पाप है। हम परमात्मा को पतितपावन इत्यादि नामों से पुकारते हैं। ऐसी दशा में हिंदू-धर्म में किसी को अपवित्र या अछूत सोचना पाप है, ऐसा करना निरा शैतानी काम है। तब से मैं बार-बार यही बात दुहराते नहीं थकता। बारह वर्ष की उम्र में मेरे मन में यह विचार जम नहीं गया था, मैं ऐसा कहने का पाखंड न करूँगा, पर मैं उस समय अछूत-प्रथा को पाप जरूर समझता था। वैष्णवों तथा अन्य हिंदुओं की सूचना के लिये यहाँ पर मैं यह कहानी दे रहा हूँ।

मैं सदैव सनातनी हिंदू होने का दावा करता हूँ। मैं हिंदू-शास्त्रों से बिलकुल अनभिज्ञ नहीं हूँ। मैं संस्कृत का विद्वान् नहीं हूँ। मैंने वेद-उपनिषद् का अनुवाद-मात्र पढ़ा है। अवश्य इसीलिये मेरा अध्ययन पांडित्य-पूर्ण नहीं है। मैं उनका घोर पंडित नहीं हूँ, पर मैंने एक हिंदू के समान उनका अध्ययन किया है, और मेरा दावा है कि मैंने उनका असली अर्थ समझा

लिया है। २१ वर्ष की उम्र तक मैंने अन्य धर्मों की जानकारी भी हासिल कर ली थी।

एक समय था, जब मैं हिंदू-धर्म तथा ईसाई-धर्म के बीच खींचा-तानी में पड़ा हुआ था। जब मेरा दिमाग़ ठिकाने आया, मैंने यह अनुभव किया कि केवल हिंदू-धर्म द्वारा ही मेरी मुक्ति हो सकती है, और हिंदू-धर्म में मेरी श्रद्धा तथा ज्ञान और भी विकसित हो गया।

उस समय भी मेरा विश्वास था कि अछूत-प्रथा हिंदू-धर्म में नहीं है। यदि है, तो ऐसा हिंदू-धर्म मेरे लिये नहीं है।

यह सत्य है कि हिंदू-धर्म में अछूत को छूना पाप नहीं समझा जाता। शास्त्रों के अर्थ के विषय में मैं कोई तर्क नहीं करना चाहता। मेरे लिये यह कठिन-सा है कि भागवत अथवा महा-भारत से उदाहरण उद्धृत करूँ। पर मेरा यह दावा है कि मैं हिंदू-धर्म का भाव समझ गया हूँ। अछूत-प्रथा की स्वीकृति देकर हिंदू-धर्म ने पाप किया है। इसने हमको नीचे गिराया और साम्राज्य का अछूत बना दिया है। हमारी छूत मुसल-मानों को भी लग गई है, और हिंदू तथा मुसलमान दोनो ही दक्षिण आफ्रिका, पूर्वी आफ्रिका तथा कनाडा में अछूत समझे जाते हैं। यह सब अछूत-प्रथा का परिणाम है।

अब मैं अपनी बात साफ़ कर दूँ। जब तक हिंदू जान-बूझ-कर अछूत-प्रथा में विश्वास रखते तथा इसे धर्म समझते हैं, जब तक अधिकांश हिंदू अपने एक अंग को, भाइयों को, छूना

पाप समझते हैं, स्वराज्य प्राप्त करना असभव है। युधिष्ठिर ने अपने कुत्ते के बिना स्वर्ग जाना अस्वीकार कर दिया। इसी प्रकार अब उसी युधिष्ठिर की सतान बिना अछूतों के स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है। आज जिन अपराधों के कारण हम सरकार को शैतान कहते हैं, क्या वही हमने अछूतों के प्रति नहीं किया है।

हम अपने भाइयो को दबाने के दोषी हैं। हम उन्हें पेट के बल रेंगाते हैं। हम उनकी नाक जमीन पर घिसवाते हैं। गुस्से से लाल आँखें कर हम उन्हें रेल डब्बे के बाहर ढकेल देते हैं। ब्रिटिश शासन ने इससे ज्यादा और क्या किया है। जो अपराध हम डायर, ओ, डायर के सर मढ़ते हैं, उनमें से कौन अपराध हमारे सिर नहा मढ़ा जा सकता। हमें इस अपवित्रता को निकाल बाहर करना चाहिए। जब तक हम दरिद्र तथा निस्सहायो को पीड़ा देते हैं, जब तक यह एक भी स्वराजी के लिये सभव है कि किसी व्यक्ति के भावों को पीड़ा पहुँचावे, स्वराज्य की बात करना मूर्खता है। स्वराज्य का यह अर्थ है कि एक भी हिंदू या मुसलमान के लिये यह सभव न हो कि एक भी दरिद्र हिंदू या मुसलमान को दबावे—पीड़ा दे। जब तक यह शर्त नहीं पूरी होती, हमें एक ओर स्वराज्य मिलेगा, दूसरी ओर छिन जायगा। हम मनुष्य नहीं, पशु हैं, यदि अपने भाइयों के प्रति पाप का प्रायश्चित्त न करें।

पर, मुझे अभी तक अपने में विश्वास है। मै देख रहा हूँ,

कवि तुलसीदास ने, जैनो तथा वैष्णवों ने, भागवत तथा गीता ने अनेकों रूप से जिस एक वस्तु का गुण गाया है, वही दान-शीलता, वही दयालुता तथा वही प्रेम धीरे-धीरे, पर दृढ़ता के साथ हमारे देश की जनता के हृदय में घर कर रहा है।

आजकल हिंदू-मुसलमानो के अनेक झगडे सुनने में आते हैं। अब भी ऐसे बहुत-से हैं, जो एक दूसरे को क्षति पहुँचाने में नहीं हिचकिचाते। पर, मैं तो यह समझता हूँ, कुल मिलाकर प्रेम तथा दयालुता बढ़ती जा रही है। हिंदू-मुसलमान ईश्वर से डरने लगे हैं। हमने अपने को अदालतों तथा स्कूलों के जादू से छुडा लिया है, और इसी प्रकार का और कोई कपटजाल हमें नहीं सता रहा है। मैंने यह भी अनुभव कर लिया है कि जिनको हम अपढ़ तथा अज्ञानी कहते है, वे ही लोग शिक्षित कहलाने के योग्य हैं। वे हमसे ज्यादा संस्कृत, उनका जीवन-हमसे ज्यादा न्यायशील है। जनता की वर्तमान मनोवृत्ति का ज़रा भी अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन-सामूहिक मत के अनुसार स्वराज रामराज्य का पर्यायवाची है।

यदि मेरे अछूत भाइयो को इस जानकारी से कोई तसल्ली हो, तो मैं यह कहने के लिये तैयार हूँ कि अब उनकी समस्या से पहले इतनी बेचैनी नहीं पैदा हो जाती। मेरा यह मतलब नहीं है कि तुम हिंदुओ से ज़रा भी निराश न होओ। जब उन्होने तुम्हारा इतना अहित किया है, तो वे अविश्वास के योग्य तो हैं ही। स्वामी विवेकानद कहा करते थे कि अछूत

दलित नहीं, पीडित हैं, तथा उनको पीड़ा देकर स्वय हिंदुओ ने भी अपने को पीड़ित बना लिया है।

शायद ६ एप्रिल को मैं नेलोर में था। उस दिन मैंने अछूतो के सग आज के ही समान प्रार्थना की थी। मैं तो मोक्ष प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं पुन. जन्म लेना नहा चाहता। पर यदि मेरा पुनर्जन्म हो, ता मे अछूत के घर पैदा होऊ, ताकि मै उनकी पीड़ा, विपत्ति, सकटो में उनका साथ दूँ, और उनके साथ मिलकर इस दुर्दशा को समाप्त करने की चेष्टा करूँ। इसी-लिये मैंने प्रार्थना की थी कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो, तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य या शूद्र के घर नहा, बल्कि अशूद्र की कोख से।

आज का दिन उस दिन से भा अधिक गभीर है। आज हमारे हृदय हजारों की हत्या से चलनी हो रहे है। इसलिये मैंने आज भी प्रार्थना की है कि यदि मै अपनी किसी अपूर्ण इच्छा के कारण मर जाऊ, या अछूतों के प्रति अधूरी सेवा करके ही मर जाऊ, या अपने हिंदुत्व को बिना पूरा किए ही मर जाऊँ, तो मै अछूतों में ही जन्म लूँ, ताकि मेरा हिंदुत्व पूर्ण हो जाय।

अछूतो से—अछूत कहलानेवालो से—भी मै एक बात कहना चाहता हूँ। तुम्हें हिंदू होने का दावा है। इसलिये यदि हिंदू तुम्हे दबाते हैं, तो तुमको यह समझ लेना चाहिए कि यह हिंदू-धर्म का नहीं, धर्म के पालन करनेवालो का दोष है। आपको अपने को मुक्त करने के लिये स्वय पवित्र बनना होगा। आपको मदिरा आदि की बुरी लतो को छोड़ना होगा।

मैंने देश-भर के अछूतों को देखा है, तथा मेरा-उनका संपर्क रहा है। मैंने यह देखा है कि उनमें सुधार की इतनी संभावनाएँ हैं, उनमें इतने गुण छिपे हुए हैं, जिनको न तो वे न हिंदू ही जानते हैं। उनका मस्तिष्क अक्षुण्ण रूप से पवित्र है। मैं तुमसे बुनना-कातना सीखने के लिये अनुरोध करूँगा, और यदि तुम इनको अपना लोगे, तो दरिद्रता को अपने दरवाजे से भगा दोगे।

अब वह समय आ गया है, जब चाहे कितनी भी सफ़ाई से तुमको जूठन दिया जाय, तुम लेना अस्वीकार कर दो। केवल अच्छा, ताजा, बढ़िया नाज और वह भी आदर से दिया हुआ लो। मैंने जो आपसे कहा है, यदि उसके अनुसार आप काम करेंगे, तो कुछ महीनों में नहीं, कुछ दिनों में ही आपका उद्धार हो जायगा।

हिंदू स्वभावतः पापी नहीं है। वे अज्ञान में डूबे हुए हैं। इस साल अछूत-प्रथा नष्ट हो ही जानी चाहिए। संसार में केवल ऐसी दो ही वस्तुएँ हैं, जिनके कारण मुझे नर-चोला धारण करने का लोभ होता है, और वे हैं अछूतोद्धार तथा गो-रक्षा। जब ये दो इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी, तभी स्वराज्य हो जायगा, और मुझे मोक्ष मिलेगा। ईश्वर तुम्हें भी इतनी शक्ति दे कि अपना मोक्ष प्राप्त कर सको।